श्रीलोमश-संहिता
[सटीक]

श्रीलोमश-संहिता

["श्रीसन्तप्रिया" व्याख्या सहित]

व्याख्याकार—

श्रीसीतारामीय श्रीमथुरादासजी महाराज के चरणाश्रित
श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि'
"वेदान्तरत्न" "साहित्यधुरीण"
श्रीरामानन्दाश्रम जनकपुरधाम

संशोधक—

पण्डितप्रवर श्रीसीतारामदासजी महाराज "चित्रकूटी"
श्रीसाकेत भवन जनकपुरधाम

प्रकाशक—

महाराज के चरणाश्रित-
श्रीरामदुलारीशरणजी
श्रीहनुमतवाटिका, अयोध्या

श्रीबिहारकुंज, जनकपुरधामनिवासी
प्रसिद्ध नामानुरागी, संतसेवी
श्री१०८स्वामीश्रीरामदासजी

संशोधक का निवेदन

श्री "लोमशसंहिता" विश्व विख्यात ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में प्रारम्भ से लेकर १४ अध्याय उपलब्ध नहीं होरहे हैं। केवल १५ वें अध्याय से लेकर २२ वें अध्याय तक प्राप्त हैं। इसके पांच अध्याय श्रीचन्द्रकला जयन्ती व्रत प्रकरण के श्रीजानकीघाट अयोध्या निवासी सन्त शिरोमणि पण्डित प्रवर विद्वत्सभादर-नीय श्रीरामबल्लभाशरणजी महाराज कृत टीका समेत बहुत पहिले ही प्रकाशित हो चुके हैं। इस समय युग धर्म के अनुसार संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थ लुप्त होते जारहे हैं। ऐसे समय में इस अद्भुत अनुपम रसमय ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है यह सौभाग्य की बात है। श्रीलोमश संहिता के यह आठो अध्याय ऐसे प्रतीत होते हैं मानो यह प्रेम की गीता ही है। महा भारत से निकली हुई १८ अध्यायी गीता के समान ही यह अष्टाध्यायी है। आशा है, यह गीता प्रेमी रसिकों का नित्य-कण्ठ-हार बनेगी। और पं० श्रीअवधकिशोरदास जी की "सन्त प्रिया" व्याख्या भी ग्रन्थ का तात्पर्य स्पष्ट करने में पूर्ण सफल हुई है। आशा है 'सन्त प्रिया' सन्तजनों को अत्यन्त प्रिय होगी। इसका संशोधन भार सन्तों ने मुझे ही सौंपा। भागवतों की आज्ञा और रूचि पालनार्थ मैंने इसका संशोधन कार्य स्वीकार किया। आर्ष ग्रन्थों का सोधना दुस्तर कार्य है। तथापि उपलब्ध तीन प्राचीन प्रतियों से मिलाकर

पाठ शुद्ध करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है । गुणग्राही सन्तजनों से यही निवेदन है कि मेरी त्रुटियों को क्षमा करते हुये इस ऋषि प्रणीत महा ग्रन्थ का रसास्वादन करें ।

निवेदक—

पं० सीतारामदास
साकेत भवन प्रेमकुटी
जनकपुर धाम

गुरु पूर्णिमा
बिक्रमी संम्बत २००६
श्रीरामानन्दाब्द ६५०

व्याख्याकार का वक्तव्य
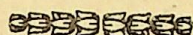
श्रीसाकेताधीश्वरी श्रीजनकराजनन्दिनी जी की ललित लीलायें उनके उपासक सन्त ही जानते हैं और रहस्य मयी होने के कारण स्वयं गुप्त रूप से सजातीय परिकरों के साथ उसका रसास्वादन करते हैं। वेद पुराण इतिहास आदिकों में उनका संकेत किया है परन्तु गोपनीय लीलाओं को सर्व साधारण के सन्मुख प्रकट करना अनुचित मानकर गुप्त रखने में ही आनन्दानुभव किया। किन्तु, उन गोपनीय लीलाओं में ही अत्यधिक रूचि रखने वाले सन्तों की रस पिपासा शान्त करने के लिये ऋषियों ने कुछ रहस्य ग्रन्थों का भी प्रणयन किया और अधिकारी विशेष को उसका उपदेश भी देते रहे। यही कारण है कि यह रस ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों की भाँति प्रचलित न हुये। श्रीलोमश संहिता भी उनमें से एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। समय के दुरतिक्रम प्रवाह में हमारे अत्यन्त ग्रन्थ विनष्ट हुये हैं अब जो प्राप्त हैं वह हमारे प्राणों के समान हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम बिखरे हुये इन रत्नों को संचय कर सुरक्षित रक्खें। और सभी प्रेमियों से प्रार्थना है कि अपने आदरणीय अनमोल ग्रन्थों का आदर कर नित्य-प्रति भगवान की पूजा के समान धूप-दीप-पुष्पादि से पूजा करें। क्योंकि इन्हीं ग्रन्थों से सब सिद्धियां और भगवत्प्राप्ति होती है।

यह अनुवाद जिन सन्तों के आग्रह बस लिखा गया उनका मैं परम उपकार मानता हूँ। क्योंकि उनकी कृपा से मुझे इसकी व्याख्या करते समय रसमय लीलाओं का प्रत्यक्ष की भाँति दर्शन होता रहा। और उनकी कृपा, आग्रह और आज्ञा ही इस कार्य को निर्विघ्न पूर्ण करने में सफल हुई है। उनको श्रद्धा पूर्वक प्रणति निवेदन पुरस्सर यह प्रसङ्ग यहां पूर्ण करता हूं। आशा है, रसवन्त सन्त इसको अपनाकर मेरी सेवा स्वीकार करने की कृपा करेंगे। इसका संशोधन कार्य पण्डित प्रवर श्रीसीतारामदास जी महाराज ने प्रेमपूर्वक किया है। इसलिये शुद्धाशुद्ध के उत्तरदायित्व से भी मुझे आप सन्तों ने मुक्त रखा यह आपकी परम कृपा मैं मानता हूँ।

अवध किशोरदास "श्रीवैष्णव"

प्रकाशक की विनय

श्रीसाकेताधीश्वरी अनन्त ब्रह्माण्ड विधायिनी श्रीजनक राज किशोरीजी की ललित लीलाओं से परिपूरित यह श्री लोमश संहिता प्रकाशित करते हुये मुझे महान हर्ष हो रहा है। इस कार्य के लिये मुझे श्रीहनुमन्निवास निवासी पूज्य चरण श्रीअनन्त स्वामी श्रीरामकिशोर शरणजी महाराज ने कृपा पूर्वक आज्ञा प्रदान की थी, मैं उनकी कहां तक महिमा वर्णन करूँ' वेही मेरे हृदय में रस सिंचन करने वाले प्रेम मय दिव्य-कृपा-जलद हैं, अयोध्या के रसिक-रत्न हैं और भावना-सिद्ध सन्तों के आधार हैं।

इस संहिता की कथा प्रति वर्ष अयोध्या में कई स्थानों में होती है। श्रीगोलाघाट, श्रीहनुमन्निवास श्रीहनुमतवाटिका और श्रीजानकीवर विहारकुञ्ज, आदि स्थानों में श्रीचन्द्रकला जन्मोत्सव के दिन बड़ी धूम-धाम से कथा होती है। कथा सुनकर प्रेमीलोग पुस्तक प्राप्ति के लिये लालायित होते थे, इसीलिए मुझे अब इसके प्रकाशन में अनुपम उल्लाश होरहा है। और श्रीजानकीघाट निवासी अनन्त श्रीविभूषित गुरुवर श्रीरामपदार्थदासजी "वेदान्ती" जी महाराज के कर कमलों में यह उपहार सप्रेम समर्पित है, कि जिन्होंने सर्व मेरे हृदयमें सर्वेश्वरीजीका प्रकाश प्रकट कियाथा।

रामदुलारीशरण

हनुमतवाटिका अयोध्या
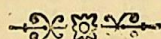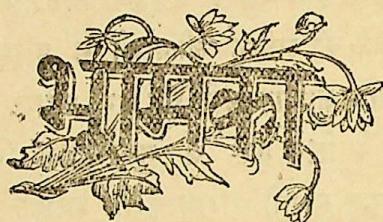
बाल्यकाल में जब मैं सन्तों को "श्रीलोमश संहिता" का पाठ करते देखता था तो श्लोकों की मधुरता मेरे हृदय में बिजली का सा असर करती थी। संतजन इस गोप्य ग्रन्थ को हृदय में छिपाकर रखना चाहते थे परन्तु, मैं इस दिव्य लीला-मय ग्रन्थ का अनुभव करना चाहता था। आज से २१ वर्ष पहले इस ग्रन्थ के आठ अध्यायों में से ५ अध्याय हमारे गुरुदेव भगवान जगद्गुरू श्री श्री अनन्त श्रीस्वामी श्रीरामबल्लभाशरण जी महाराज ने स्वयं टीका करके प्रकाशित कराये थे। जिनको मैंने पाठ करके अपार लाभ उठाया। यह त्रेतायुग में रचा हुआ प्राचीन सिद्ध ग्रन्थ है। इसका विधि पूर्वक पाठ करने से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। परन्तु, प्रेमी सन्त तो केवल पराभक्ति और प्रिया-प्रियतम के साक्षात्कार के लिये ही इसका पाठ करते हैं। इस ग्रन्थ के अनुष्ठान से अनेकों सन्तों को विचित्र अनुभव हुये हैं। श्रद्धा विश्वास पर्वक इस ग्रन्थ के मूल श्लोक-आठों-अध्याय का

नित्य पाठ करने से कुछ महीनों में ही मानसी भावना सिद्ध हो जाती है और दिव्य—धाम—लीला—दर्शन प्राप्त होने लगता है।

सम्बत १९८५ में श्रीचन्द्रकला जयन्ती व्रत कथा प्रकाशित हुई थी। जिसमें इस संहिता का इतिहास इस प्रकार छपा था कि—"आज कल हिन्दुओं के सहस्रों ग्रन्थों में से बिखरे अंश कहीं २ पाये जाते हैं इसका कारण यह है कि औरङ्गजेब हिन्दू धर्म को जड़ मूल से नष्ट करने के लिये धर्म ग्रन्थों को जलाता था। यहां तक कि उसकी सारी फौज ने ६ महीने तक उन्हीं ग्रन्थों को जलाकर रसोईं बनायी थी। कोई २ ग्रन्थ कहीं छिपे रह गये उनसे फिर प्रचार हुआ। बहुत से ग्रन्थ अप्राप्य हो गये और बहुत से खण्डित रह गये-जैसे महा रामायण के कुछ ही सर्ग मिलते हैं और सदा शिव संहिता के केवल ६ अध्याय ही प्राप्त हैं। सनतकुमार संहिता भी अपूर्ण है और बाल्मीकि संहिता के भी ६ अध्याय छपे हैं। यही दशा वसिष्ठ संहिता और लोमश संहिता की है। इस छिन्ना भिन्न साहित्य का संकलन करना देश के विद्वानों का प्रधान कर्त्तव्य है। इसी लोमश संहिता के आधार पर चिरान के प्रसिद्ध विद्वान रसिकाधिराज महाराज श्री जीवारामजी "युगल प्रिया" जी ने 'शृंगार रहस्य रत्न मंजरी'-नामक ग्रन्थ निर्माण किया था।

श्रीलोमश चरित्र

जिन श्रीलोमश जी की रची हुई यह संहिता है उनका एक नाम 'चिरंजीवी मुनि' भी है। कहते हैं कि-यह अनेक कल्पों के पुराने ऋषि हैं जब ब्रह्माजी के कल्पान्त में मृतु होता है तब यह अपना एक रोम उखाड़कर फेंक देते हैं विचारते हैं कि पिताजी बार २ मरा करेंगे तो कहां तक भद्र होंगे ऐसे दीर्घायू हैं एक बार भगवान की बाल लीला देखकर इनको भी मोह हो गया था तब भगवान ने इनको भी माया दिखलाथी थी। 'मानस'में भी यह प्रसंग आया है कि-"चिरजीवी मुनि ज्ञान विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु ॥'

एक बार इन्होंने भगवान से मृत्यु मांगी तो भगवान ने कहा कि-अगर तुम साधू ब्राह्मणों की निन्दा करो तो तुम्हारी मृत्यु होसकती है। तदनन्तर मार्ग में ही एक घटना घटी कि- लोमश जी का नियम था कि नित्य प्रति ब्राह्मण का चरणामृत पान करते थे, उस दिन कोई ब्राह्मण नहीं मिला तो इन्होंने ब्राह्मण के द्वारा अन्य जाति की स्त्री में उत्पन्न हुये बालक का चरणामृत लेकर पान किया। यह देखकर उसी क्षण भगवान् प्रकट हो गये और बोले-कि-तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती, क्योंकि तुम्हारे हृदय में न ब्राह्मणों की भक्ति कम होगी और न मृत्यु आयेगी।"

श्रीरामायण उत्तर काण्ड में श्री काकभुशुण्डजी के

चरित्र में भी वर्णन है कि जब काकभुशुण्डि जी का ब्राह्मण के घर में जन्म हुआ तो भगवत्प्राप्ति के लिये विचार रहे थे कि

मेरु शिखरवट छाया मुनि लोमश आसीन।
देखि चरण शिर नायऊँ बचन कहेऊँ अतिदीन॥

उस समय मुनिवर ने परीक्षार्थ ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया किन्तु इन्हों ने कहा कि "भरि लोचन विलोकि अवधेशा। तब सुनिहौं निर्गुण उपदेशा॥" ऐसा कह कर वादाविवाद किया। तब श्रीलोमश जी ने क्रोधित हो शाप दे दिया। शाप देने पर भी काकभुशुण्डि जी भक्त में दृढ़ रहे और शाप सह लिया यह देख कर मुनिवर का हृदय दहल गया तब फिर बुलाकर श्रीराम मन्त्र दिया और रसमय कथा श्रवण कराई। फिर बोले कि यह श्रीराम रहस्य गुप्त वस्तु है। इसे मैंने शंकरजी से सुना था कि—

"रामचरित सर गुप्त सुहावा। शम्भु प्रसाद तात मै पावा॥
तोहिं निजभगत रामकर जानी। ताते मै सब कहेउँ बखानी॥
राम भगति जिनके उर नाहीं। कबहुँ नतात कहिय तिनपाहीं
राम रहस्य ललित विधिनाना गुप्तप्रकट इतिहास पुराना॥
बिनश्रिम तुमसब जानव सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ"

इस प्रकार वरदान भी दिया। उपरोक्त चौपाइयों से सिद्ध होता है कि महर्षि लोमशजी शृङ्गार रसमय श्रीराम रहस्यके अन्तरङ्ग उपासक थे। काकभुशुण्डि जी को खूब परख

लिया तब भक्ति का उपदेश दिया था फिर महा अन्तरङ्गारस का उपदेश देने में न जाने कितनी परीक्षा करते होंगे। इसी लिये उन्हों ने अपनी संहिता में अपनी गुप्त भावना का रहस्य रच कर छिपा रक्खा था। परम्परा से सिद्ध महात्माओं के द्वारा इस सिद्ध ग्रन्थ का रक्षण होता आया है। प्रेमियों की लालसा एवं आग्रह अत्यन्त होने के कारण इसको प्रकाशित किया जा रहा है आशा है श्रीलोमश जी के हृदय गत भावों का रहस्य प्रेमियों को दिव्य-दर्शन-सुख प्रदान करेगा।

इस ग्रन्थ की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कान्ता-भाव की शक्ति प्रदान करने वाली महाशक्ति का सम्पूर्ण रहस्य वर्णन किया गया है। क्योंकि-जिस प्रकार श्रीहनुमान जी की कृपा बिना दास्य भाव प्राप्त नहीं होता और जिस प्रकार श्रीदशरथजी तथा श्री कौसिल्या अम्बा की कृपा बिन वात्सल्य रस प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार से सखियों की कृपा बिना शृङ्गार रस में प्रवेश नहीं होता। सो इस ग्रन्थ में वही महान तत्व कहा गया है अर्थात् सखी भावना रूपी खजाने को प्राप्त कराने वाले रहस्य का ही पूर्ण निरूपण है।

जिन सन्तों के आग्रह से यह भूमिका मैंने लिखी है उनका मैं परम उपकार मानता हूं, क्यों कि इसी नाते अन्त-रङ्ग लीलाओं की दुर्लभ झांकी का अवसर मुझे भली भांति प्राप्त हुआ है। और इसकी व्याख्या करने वाले तो देशके एक उज्वल रत्न हैं। श्री अवधकिशोरदास जी श्रीवैष्णव प्रकाण्ड

विद्वान् होते हुये भी अत्यन्त प्रेम पूर्वक हृदय वाले हैं और परम प्रवीण साहित्य रसिक हैं। उन्होंने इस श्रीलोमश संहिता की टीका बड़ी ही सुन्दरता से की है मानो अक्षर अक्षर में अमृत रस भर दिया हो। अनुभव के बिना कोई पंडित इतनी सुन्दर टीका नहीं लिख सकता इस लिये ज्ञात होता है कि आप केवल विद्वान् ही नहीं महान रसास्वादन करने वाले अन्तरङ्ग प्रेम के भी पंडित हैं। मैं उनको इस व्याख्या के लिये हृदय से बधाई देता हूँ।

ज्येष्ठ पूर्णिमा
सम्वत २००७

जयरामदेव "कविरत्न,,
वृन्दावन धाम

श्रीसीतारामजी

जय करुणामयि स्वामिनी, दयासिन्धु रघुवीर।
जय सद्गुरु पद कञ्जयुग, हरहु दुसह भवपीर ॥ १ ॥
चन्द्रकला सर्वेश्वरी, दम्पति को सुख दैन।
करहु कृपा पाऊँ परम, दिव्य रहस सुख ऐन ॥ २ ॥
प्रणवौं पूर्वाचार्य पद, जिन प्रगट्यो यह तत्त्व।
भवरस विषय विलास रिपु, दिव्य रासरस सत्त्व ॥ ३ ॥
यह रस रङ्ग विलास शुचि, शिव सर वस सुखरूप।
लखै नयन हिय खोलिकै, परैं न ते भवकूप ॥ ४ ॥
'प्रेमनिधी' कर जोरि कै, मांगत सन्त निहोरि।
देहु हृदय हुलसाई कै, हृदय बसै यह जोरि ॥ ५ ॥

श्रीरामानन्द-आश्रम जनक-
पुरधाम (तिरहुत)
श्रीगुरु पूर्णिमा, २००६

सन्तपदरेणु
अवधकिशोरदास
श्रीवैष्णव

❀ श्रीजानकीवल्लभोविजयते ❀

❀ श्रीसम्प्रदायाचार्यवर्य्याविजयन्ते ❀

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीलोमश-संहिता

पञ्चदशोऽध्यायः

मूल-पिप्लादो मुनिश्रेष्ठो ब्रह्मपुत्रो दिगम्बरः ।
पप्रच्छ विनयाद्धीमान् लोमशं मुनिसत्तमम्॥१॥

अथ श्रीसन्तप्रिया-व्याख्या

मंगलाचरणम्

जयत्यतिकृपापूर्णा जानकी जगदीश्वरी ।
जगन्नाथश्च श्रीरामः साङ्गः सायुध-पार्षदः॥१॥

\+ \+ \+

श्रीसीता-सर्वेश्वरी, सर्वेश्वर रघुनाथ ।
मारुति-रामानन्द पद, प्रथम नवावौं माथ ॥१॥
चन्द्रकला पद नख छटा, घटा भक्ति रस रूप ।
ध्याय गाय कल नाम शुचि, पावौं प्रेम अनूप॥२॥

श्रीसीतारामीय श्रीसद्गुरु मथुरादास।
विनवौं विनय समेतप्रभु,पुरवहु हृदय हुलास।३।
श्रीमल्लोमश-संहिता, अष्टाध्याय ललाम।
'प्रेमनिधी'धनि ते रसिक,जे गावहिंरसधाम।४।
रसिक सुजन मन भाविनी,'सन्तप्रिया'शुभ नाम।
व्याख्या विमल विवेक युत,वरणौं लोकललाम।५

अत्यन्त कृपापूर्ण जगदीश्वरी श्रीजनकनन्दिनी जू की जय हो, सपरिकर-सपार्षद-सायुध सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराम चन्द्र जी–महाराज की जय जयकार हो। जिनकी कृपा दृष्टि मात्र से ही जीवों का परमकल्याण होता है उन सन्तों का पुण्यस्मरणकर उन्हीं की आज्ञा पालन करने के लिये यह 'सन्त प्रिया' व्याख्या विक्रमाब्द २००६ श्रीरामानन्दाब्द ६५० शुभकृन्नाम शुभ संवत्सर की ज्येष्ठ शुक्ला ११ निर्जला एकादशी तथा मङ्गलमूर्ति मारुति नन्दन के मङ्गलवार को श्रीहरि-गुरु-सन्त चरणों का स्मरणकर प्रातःकाल नित्य नियम-पूजा पाठ से निवृत्त होकर श्रीरामानन्द-आश्रम जनकपुर धाम में श्रीआचार्य चरण पादुका के निकट बैठकर अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' श्रीगुरु-कृपा से लिखना प्रारम्भ करता है। वे कृपालु सन्त सुजन स्वयं हो

उर प्रेरक बनकर जो कुछ लिखवाना चाहेंगे लिखवा लेंगे। रहस्यमार्ग में पूर्ण अनभिज्ञ यह सेवक तो केवल उनके मनो विनोद का एक निमित्त मात्र ही है।

मुनियों में परमश्रेष्ठ-ब्रह्मपुत्र-दिगम्बर तथा बुद्धिमान् पिप्पल्लाद् ऋषि ने एक वार विनय पूर्वक महात्माओं में सर्वोत्तम पूज्य लोमश ऋषि से यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

भगवन् भवतापूर्वं शक्त्याख्यानञ्च ह्यद्भुतम् ।
कथितं परया प्रीत्या सर्वलोक सुखावहम् ॥२॥
तत्र सर्वमहाशक्ति बन्द्यमान पदाम्बुजा ।
प्रेरिका सर्वशक्तीनामचिन्त्यैश्वर्य्य मण्डिता॥३॥
काचिच्चन्द्रकलानाम्नी शक्तिःप्रोक्ता त्वया मुने।
तदाख्यानं महद्दिव्यं सर्वकल्मषनाशनम् ॥४॥
श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं सर्वज्ञाद्दिव्यदर्शनात् ।
कथयस्व महायोगिन् भवबन्धविमोचनम् ॥५॥

हे भगवन् ! आपने प्रथम श्रीशक्ति का महान् अद्भुत समस्त लोकों को सुख देने वाला सुन्दर आख्यान बर्णन कर सुनाया ॥ २ ॥ उस प्रसङ्ग में सभी महा शक्तियों द्वारा वन्दित चरणाम्बुजा और सर्व शक्तियों को प्रेरणा

प्रदान करने वाली-अचिन्त्य दिव्यैश्वर्य सम्पन्ना ॥ ३ ॥ श्रीचन्द्रकला नाम की कोई सर्वश्रेष्ठ शक्ति का नाम निर्देश आपने किया था, उनका भवबन्धन मुक्त करने वाला महादिव्य आख्यान (चरित्र) आप वर्णन करिये. हे महायोगिन् ! आप सर्वज्ञ हैं, अलौकिक दिव्यलीलाओं को भी आप देखते हैं। अतएव आपके श्रीमुख से यह रहस्य मैं श्रवण करना चाहता हूँ ॥ ४-५ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लोमशो मुनिसत्तमः ।
उवाच परया प्रीत्या हर्षपूरितमानसः ॥६॥

पिप्पलाद ऋषि का ऐसा पावन वचन सुनकर मुनियों में परमश्रेष्ठ लोमश मुनि परमप्रेम पूर्वक आनन्दपूर्ण हृदय से उनके प्रति मधुर वाक्य बोले ॥ ६ ॥

धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रश्नस्ते तत्त्वविन्मतः ।
स्मारितं हि त्वया पुण्यं महदाख्यानमद्भुतम् ॥७॥
मेरुपृष्ठे मया पृष्ठो ब्रह्मा वेदविदाम्बरः ।
पार्वत्यै शंकरेणोक्तं प्रोक्तवांस्तद्वदामि ते ॥८॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! आप धन्य हो, आपका प्रश्न तत्त्वद्रष्टाओं के मन भाने वाला है, आज आपने महान् अद्भुत

आश्चर्यपूर्ण पवित्र चरित्र का स्मरण कराया है ॥ ७ ॥ सुमेरु पर्वत के शिखर पर वेद विद्याओं में परम श्रेष्ठ पितामह श्रीब्रह्मा जी से यही प्रश्न मैंने किया था, उस समय ऐसा ही प्रश्न पार्वती ने जब शंकर जी से किया तब उसके उत्तर में भूतभावन भगवान् महादेव ने जो चरित्र वर्णन किया वही चरित्र चतुरानन ने मुझको सुनाया, मैं भी वही कथा आज श्रद्धाभक्ति समेत आप को सुनाता हूँ ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्मोवाच—

एकदा परमे रम्ये तपोधन निषेविते ।
रम्य पक्षि मृगाकीर्णे कलकोकिल कूजिते ॥९॥
कैलाशे परमाह्लादपूरितः शशिशेखरः ।
एकान्ते सुखमासीनः शिवः शिवपरायणः ॥१०।
प्रसन्नं तं तथा दृष्टवा पार्वती जगदीश्वरी ।
प्रीता लब्धक्षणा देवी प्रोवाच नतकन्धरा॥१२॥

एक बार तपस्वीगणों से सुसेवित—रमणीक पक्षी-मृग आदिसे सुशोभित-कोकिल कीर-मयूरादि के कलनिनाद से परिपूरित परम मनोहर कैलाश पर्वतपर परमानन्द परिपूर्ण हृदय लोक कल्याण परायण भगवान चन्द्रचूड़ामणि को एकान्तमें सुखपूर्वक विराजमान देखकर वार्तालाप करने का

यह सुन्दर अवसर, ऐसा जानकर तथा भूतनाथ महादेव को प्रसन्न चित्त देखकर जगदीश्वरी देवी पार्वती विनय पूर्वक मस्तक नवाकर प्रणाम करके बोली ॥ ९-१०-११ ॥

श्रीपार्वत्युवाच–

देव देव महादेव सर्वलोक सुखावहम् ।
वक्तुमर्हसि विश्वात्मन् रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥
चक्रवर्ति कुमारस्य रामस्य जगदात्मनः ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यमूर्तेः शृङ्गारस्वस्तरोः ॥ १३ ॥
दिव्यानन्तमहामोद लीलारस महोदधेः ।
अचिन्त्यैश्वर्य मर्य्यादा पुंसः पुण्यकलानिधेः ॥ १४

हे देव देव महादेव ! जगदात्मा - चक्रवर्तिकुमार-कोटि कन्दर्प लावण्यधाम - शृङ्गार सुरद्रुम - दिव्य अनन्त सच्चिदानन्द चिद्विलास लीला रस महोदधि - अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् मर्यादापुरुषोत्तम–सकल कल्यान महार्णव, पर ब्रह्म रस विग्रह सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का गोपनीय सर्वोत्तम रहस्य जो सर्वलोक सुखप्रद है आप कृपा करके वर्णन करिये ॥ १२-१३-१४ ॥

पुंसामगोचर स्थाने भावगम्येऽति दुर्लभे ।
सर्वर्तु कुञ्जपुञ्जाढ्ये हंसकोकिलनादिते ॥ १५ ॥

नानाश्चर्य्यमये रम्ये रसराजैकविग्रहे।
साकेतान्तः पुरे दिव्ये दिव्यरत्न विभूषिते ।१६।

साकेतपुर के दिव्य अन्तःपुरमें जो दिव्य रत्नों से विभूषित है, पुरुषभाव के अभिमानी आत्माओं को जिसके भीतर प्रवेश करने का अधिकार नहीं है, भावुक भक्तों के लिये वह अति दुर्लभ भी प्रभु की कृपा से सुलभ है, नाना भाँति के आश्चर्य में डालने वाले मनोहर पदार्थों से परिपूर्ण है, रसराज श्रृङ्गार रस मूर्तिवान् होकर जहां विहार करता है उस दिव्य धाम साकेत के कुञ्जनिकुंजों में ।।१५-१६

स्वाभीष्ठरूपमाधुर्य्यप्रपश्चातुर्य्यभूषितैः।
नानाकेलिकलाभिज्ञैर्मायाविहारि विचेष्टितैः ।१७।
सखीवृन्दसहस्रैश्च सेव्यमानपदाब्जया।
नित्यया दिव्यसौन्दर्य सच्चिदानन्दरूपया ।१८।
महिष्या प्रियया सार्द्धं सीतया तुल्यशीलया।
क्रीडतोनन्त क्रीडाभिमुग्धवैदग्धभावतः ।१९।
कथमत्राधिकार स्यात्त्वेतन्नामशेषतः।
ब्रूहि विस्तरतःस्वामिन् यद्यहं तेऽतिवल्लभा।२०

अपने मनोरथ के समान इच्छित, रूप-माधुर्य्य-अवस्था-चतुराई-से विभूषित वस्त्रालङ्कार-हावभाव हृदय-हारी सङ्केत इङ्गितादि में परम निपुण-समस्त कलाओं से पूर्ण कौतुक केलि करने वाली-सहस्रों सखी वृन्दों से जिनके चरण कमल सुसेवित होते हैं ऐसी नित्य एक रस-दिव्य सौन्दर्य माधुर्य्यमूर्ति-सच्चिदानन्द स्वरूपा अपने समान तुल्य रूप-गुण-वय-स्वभावादि युक्त पट्ट महिषी श्रीसीता जी के साथ अनन्त भावानुराग से मुग्ध-वैदग्धादि लीला श्रीराघवेन्द्र प्रभु जहां नित्य करते हैं उस रास मण्डल में चेतनों को प्रवेश करने का सम्पूर्ण अधिकार किस प्रकार हो सकता है ? हे स्वामिन् ! यदि मैं आपकी अत्यन्त प्राणोपम प्रिया हूँ तो कुछ भी न छिपाकर सत्य मार्ग का दर्शन कराइये ॥ १७-१८-१६-२० ॥

श्रीशिव-उवाच—

धन्याद्धन्यतरासि त्वं प्रिये भाग्योदयो हि ते ।
यदेतद्धि त्वया पृष्ठं गुह्याद्गुह्यतरं महत्॥२१।
सर्वतो दुर्लभं भद्रं सीताराम-रहस्यकम् ।
योगिनोप्यत्र मुह्यन्ति यतन्तोऽपि समाधिभिः।२२

हे प्रिये । तुम धन्य-धन्य हो, आज तुम्हारा भाग्योदय हो गया, अतः गुह्य से भी गुह्य महा रहस्य की बात तुमने

पूछी है । सबको दुर्लभ–कल्याण स्वरूप-श्रीसीतारामजी का गुप्त रहस्य योगी जनों को भी–महा दुर्लभ है, नाना भांति से योग समाधि लगाकर इस तत्त्व की शोध करने वाले बड़े बड़े योगीश्वर भी इसमें मोहित हो जाते हैं ॥ २१–२२ ॥

शत जन्मोद्भवैः पुण्यै र्जप दानार्चनादिभिः ।
नराणां शुद्धभावानां हरौ भक्तिः प्रजायते ।२३।
सर्वसाधनवर्गेषु भक्तिः श्रेष्ठा निगद्यते ।
तत्त्वज्ञैः साध्यरूपा सा महानन्द प्रदायिनी।२४

सैकड़ों जन्मों के जप–दान–पूजनादि शुभ कर्मों का जब पुण्यफल उदय होता है तब विशुद्धान्तः करण वाले मनुष्यों के हृदय में प्रभु की प्रेम भक्ति प्रकट होती है । सभी मोक्षप्रद साधनों में भक्ति सर्व श्रेष्ठ कही गयी है, इसीलिये तत्त्वद्रष्टा महात्मागण महाआनन्द प्रदायिनी भक्ति को साधन न मानकर साध्यस्वरूपा ही मानते हैं ॥ २३–२४ ॥

ज्ञान विज्ञानयोः प्राप्तेः पश्चादात्मन्यधीश्वरे ।
हरौ प्रशस्त भावो यो भक्तिःसा त्रिविधामता ।२५
वैधीति प्रथमा ज्ञेया द्वितीया दृष्ट लक्षणा ।
रागानुगा तृतीया सा सर्वतो दुर्लभामता ॥२६

ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् सर्वान्तर्यामी ईश्वर का स्वरूप जानकर श्रीहरिचरणों में अनन्य विशद भाव प्रकट होता है, उसी को भक्ति कहते हैं, वह भक्ति तीन प्रकार की है। प्रथम तो वैधी (वैदिक क्रिया कलाप वर्णाश्रम धर्म नियमादि पालन करते हुए प्रभु के प्रति कुछ अनुराग रहना वैधी भक्ति कही जाती है, इसमें कर्म-धर्म पर विशेष आग्रह रखते हुए भजन करने का मन भी होता है) दूसरी दृष्ट लक्षणा (सन्त भक्तों की सेवा पूजा भजन सङ्कीर्तनादि देख सुन कर थोड़ी देर के लिये अत्यन्त अनुराग बढ़ जाना, फिर अकेले पड़ने पर पुनःपूर्ववत् साधारण भावना रखना दृष्टलक्षणा भक्ति कहाती है, तीसरी रागानुगा भक्ति (केवल प्रभु के प्रति अनुराग का ही प्राधान्य रखकर सर्वतोभावेन सब ओर से विरक्त हो जाना प्रेमाभक्ति का लक्षण है) यह सब प्रकार से परम दुर्लभ है ॥ २५-२६ ॥

विधिना शास्त्रनिर्देश भयेन क्रियते हि या।
वैधी सा प्रोच्यते प्राज्ञैर्ज्ञान साधनरूपिणी ।२७

वेद शास्त्रों की आज्ञा है, इसलिये विधिपालन

लिये एवं शास्त्र मार्ग से विपरीत निषिद्धाचरण करने से दण्ड भागी बनने के भय से जो पूजन-जपादि भक्ति करता है वह वैधी भक्ति कही जाती है, यह भक्ति विद्वानों ने ज्ञान वैराग्य की साधन स्वरूपा मानी है ॥ २७ ॥

अनुरागवतोऽन्यस्य नामसंकीर्तनादिकम् ।
दृष्ट्वा समुत्थिता चित्ते भक्तिःसा दृष्टलक्षणा॥२८

अनुरागी प्रेममूर्ति सन्त भक्तों को भगवन्नाम-यश लीला गुण संकीर्तनादिक करते देखकर हृदय में भक्ति का प्रकट होना और सत्सङ्ग के अभाव में शिथिल पड़ जाना दृष्ट लक्षणा भक्ति का स्वरूप है ॥ २८ ॥

निर्धूत कल्मषे चित्ते भगवद्धर्मसेवनात् ।
वैराग्ये सर्वतो जाते विज्ञाने चाति निर्मले ॥२९
परमस्नेहरूपा या सानुरागोत्थिता स्वतः ।
रागानुगा समाख्याता तृतीया भक्तिरुत्तमा ॥३०

पाप दोष रहित निर्मलचित्त में भागवत-धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सांसारिक सभी वस्तुओं के प्रति तीव्र वैराग्य तथा सत्-असत् पदार्थों का एवं निज स्वरूप

परस्वरूपादिक अर्थपञ्चक का यथार्थज्ञान प्रकट होता है। तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दों में अनन्य अविचल अनुराग पूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति का स्वतः अन्तःकरण में जो उदय होता है वह भक्ति रागानुगा (प्रेमा) भक्ति के नाम से पुकारी जाती है, यह सर्वोत्तम भक्ति तीसरी भक्ति है॥२९-३०

शान्तो दास्यं वात्सल्यं सख्यं शृङ्गार एवच।
पंचभेदर्षभिः प्रोक्ता भक्ती रागानुगात्मिका।३१

शान्त-दास्य-वात्सल्य-सख्य और शृङ्गार भेद से पांच प्रकार की रागानुगात्मिका भक्ति ऋषियों ने कही है॥३१।

रागानुगापि त्रिविधा भेदतः कथयामि ते।
प्रेमा परा तथा प्रौढा ब्रह्मण्येषा परारतिः॥३२।

रागानुगा भक्ति के और भी जो तीन अवान्तर भेद हैं मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो! परब्रह्म प्रभु श्रीराम जी के चरणारविन्द में जो भक्ति होती है वह प्रेमा-परा तथा प्रौढा भेदों से तीन प्रकार की मानी जाती है॥ ३२॥

नवधासेवनात् सम्यग्भाववृद्धेरनन्तरम्।
प्रावृण्नदीव कल्लोल तरंगावर्तवेगतः॥३३॥

समुद्रं विशते ह्येवं स्नेह वृत्तिः परेश्वरे ।
प्रेमैषा सर्वदोषाणां दहने दहनोपमा ॥ ३४ ।

श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का सम्यक् प्रकारेण विधिपूर्वक सन्त-भक्त-सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर सेवन करने से समस्त दोष दुर्गुणों को ढाहती हुई वर्षाऋतु में बढ़ी हुई तरङ्ग-भँवर-कल्लोलनादादि से परिपूर्ण समुद्र की ओर दौड़ती हुई वेगवती नदी के समान जो भावना की एकाएक वृद्धि होती है सर्वेश्वर के प्रति उसी स्नेह वृत्ति को प्रेमा भक्ति कहते हैं, यह प्रेमा भक्ति समस्त दोषों को-पापों को जलाकर भस्म कर देने में प्रचण्ड अग्नि के समान है ॥ ३३-३४ ॥

भावांग परिपाकेन परत्वज्ञान पूर्वकम् ।
रतेःस्थैर्य्यं परस्मिन् यद् बुद्ध्यादिविलयोद्भवम् ॥ ३५
सैषा परा समाख्याता भक्तिश्चानुभवात्मिका ।

सख्य–शृङ्गारादि भावों को जानकर परत्व ज्ञान पूर्वक किसी उपयुक्त भाव को सम्बन्धादि भावनायुक्त ग्रहणकरना तथा मनन चिन्तवन द्वारा अपने भाव में पूर्ण रूप से परिपक्व

होकर प्रभु के प्रति एक प्रकार की भावना की स्थिरता प्राप्त कर लेना एवं उसी भावना में तल्लीन-तद्रूप होकर मन बुद्धि इन्द्रियादिका बाह्य व्यापार विस्मरण हो जाना आदि जिस अनुभावात्मिका भक्ति में होता है परमात्मा के प्रति उसी श्रेष्ठ भावना को पराभक्ति कहते हैं ॥ ३५ ॥

रसराज रसास्वादात् स्वरूपावेशतः क्रमात् ।३६।
विरहाग्निसमुद्दीप्तेः सर्ववृत्ति निरोधतः ।
प्रौढा ह्येषा समाख्याता साक्षात्कारःपरात्मनः।३७

रसराज का महामधुर रसास्वादन करने से अपने दिव्य स्वरूपका क्रमशः पूर्ण आवेश आजाना, भगवद्विरहमें प्रियतम के वियोगकी ज्वाला से चारों ओर व्याप्त होजाने से समस्त अन्य वृत्तियों का एकान्त निरोध होजाना तथा उस तीव्रप्रेमप्रवाहमें बहते हुए जीवन सुख से निराश बने मृत प्रायः आत्माओं को जिस दशा में दिव्यामृत वृष्टि के समान भगवत्स्वरूपका साक्षात्कार होता है उसी देव दुर्लभ भाग्यशाली अवस्था को प्रौढा भक्ति कहते हैं ।।३६-३७।।

प्रेमा परा तु सर्वत्र प्रौढा शृंगार गोचरा ।
सा पुरुषार्थ रूपा च सम्मता ब्रह्मवादिनाम् ।३८

प्रेमः और पराभक्ति का दर्शन तो सभी दास्य-सख्य वात्सल्यादि रसोंमें होता है परन्तु प्रौढा भक्ति विशेषतः शृङ्गार रसही में दृष्टिगोचर होती है, ब्रह्मतत्त्ववेत्ता महर्षियों ने इसी प्रौढाभक्ति को पुरुषार्थस्वरूपा साध्या भक्ति मानकर वर्णन किया है ॥ ३८ ॥

रस शब्दो हि शृङ्गारे मुख्यवृत्तितया स्थितः।
अन्यत्र स भवेद्गौणः परिभाषा विवर्जितः।३९।

रसशब्द यद्यपि सब रसों के लिये समान रूप से व्यवहार किया जाता है परन्तु शृङ्गार रसमें ही मुख्यवृत्ति से स्थित है पारिभाषिक न मानकर अन्य भावों में रसशब्दका प्रयोग गौण हैं, शृङ्गार रसमें रूढी है ॥ ३९ ॥

स सम्पाद्यः प्रयत्नेन तत्त्वज्ञैः सूक्ष्मदर्शिभिः।
यमृते न परानन्दावाप्तिर्यत्न शतैरपि ॥ ४० ॥
ब्रह्माद्यैर्भाव्यमानोऽयमन्तमुख्यतमो रसः।
रसराजस्ततो देवि ब्रह्मरूपो न संशयः ॥ ४१ ॥

तत्त्ववेत्ता सर्वज्ञ विद्वानोंको उचित है कि उसी प्रेम रसको प्रयत्न करके सम्पादन करें जिसके बिना सैंकड़ों प्रयत्न

करने पर भी परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥४०॥ ब्रह्मादिक देवता गण भी-सभी रसोंमें मुख्यतम रस मानकर इसी रसकी भावना करते हैं इसलिये हे देवि ! रसराज स्वयं ब्रह्म स्वरूप ही है इसमें कोई संशय नहीं है ॥४१॥

अथैतत्सम्प्रवक्ष्यामि सावधानाच्छृणु प्रिये।
अधिकारो रसे चात्र कदा केन कथं भवेत् ॥४२

हे प्रिये। अब मैं इस रसमें किसका अधिकार किस उपाय से कैसे होता है ? यह वर्णन कर सुनाता हूँ तुम सावधान चित्तसे श्रवण करो ॥ ४२ ॥

स्वर्णसद्मनिकुंजेषु केलिस्थानेषु नित्यशः।
विहाराः कोटिशो दिव्या दम्पत्यो रममाणयोः।४३
जायन्ते परमानन्दमूलभूताः सनातनाः।
श्रीसीतारामयोर्नित्याःनानाश्चर्य्यमयाः किल।४४

श्रीसाकेत धाम के कनक मन्दिर में कुञ्ज-निकुञ्जादि नित्य केलि क्रीड़ा करनेके रमणीय स्थान बने हैं। उन दिव्यदेशों में रमणकरने वाले सनातन दिव्य दम्पति प्रभु श्रीसीतारामजी कोटि कोटि भांति के दिव्य विहार करते हैं।

उस समय उनकी चिदानन्दमयी उस क्रीड़ामें चिद्विलासका विस्तार करने के लिये परमानन्दमूल स्वरूप नित्यसनातन नानाविध आश्चर्यमयी लीला करने वाली ॥ ४३-४४ ॥

तत्र यूथान्यनेकानि सखीनां केलि हेतवे ।
द्वयोरङ्गात्समुत्थानि प्रविभक्तानि भेदतः ॥४५॥

युगल प्रभुके श्रीअङ्गों से प्रगटी हुई क्रीडा करनेके लिए सखिगण अनेकों यूथके यूथ अपनी-अपनी सेवाके भेदसे दल मण्डल बाँधकर सेवा में दोनों ओर उपस्थित रहती हैं॥ ४५॥

बहुजन्मार्जितैःपुण्यैर्यस्मिन्कस्मिन् यदृच्छया ।
कृपया देवदेवस्य रामस्य परमात्मनः ॥ ४६ ॥
आसां दृष्टिः भवेत्पूता स्वाधिकार प्रदायिनी ।
लभते स तदा प्रीतिं रसराजे सुखात्मके ॥४७॥

जब सर्वदेव शिरोमणि परमात्मा परब्रह्म प्रभु श्रीराम जी की कृपा से किसी जीव के अनेक जन्मार्जित सत्कर्मोंका कभी उदय होता है तब इन यूथेश्वरियों की निज अधिकार प्रदायिनी पवित्र दया दृष्टि उस जीव पर पड़ती है, तभी उस को रस राजकी उपासनामें प्रीति होतीहै और सद्गुरु के शरण

जाकर भावना-अष्टयामादि प्राप्त कर युगल सरकार की अन्तरङ्ग उपासनाका अधिकारी बनता है ॥४६-४७॥

यावन्न जायते दृष्टिरासां जीवे कृपात्मिका ।
तावत्कल्पसहस्रैस्तु सुकृतैर्न व्रजेद्रतिम ॥४८ ॥
ततो यत्नेन वैदेह्याःसखीनां तु विवेकिभिः ।
कृपा साध्या सदा सद्भिःसर्वैश्च सुकृतैःस्वकैः ।४६

जब तक इन सहचरियों की कृपापूर्ण दृष्टि जीव पर नहीं होती है तबतक रसराज निष्ठात्मक दिव्यरति कोटिकल्प पर्यन्त सुकृत करने पर,भी प्राप्त नहीं होती है। सुकृत का सिद्धिफल सहचरियों की अनुकम्पा और उनकी अनुकम्पा का फल रसराज निष्ठा प्राप्ति है, रसराज निष्ठा का फल अन्तरङ्गलीला प्रवेशका अधिकार और उस अधिकारका फल प्रभुका चिद्विलास प्रिया प्रियतमके पुण्यविहार का परात्परतम दर्शन है, जिसे पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है, पूर्णकाम होजाता है ॥ ४८ ॥ इसलिये बिवेकी पुरुषों को उचित हैं कि अपने समस्त सुकृतोंका एकमात्र फल यही चाहें कि श्रीविदेहराजकुमारीजूकी अन्तरङ्गा अनन्य सहचरियों की कृपादृष्टि प्राप्त हो, यही भाव सज्जनों का भूषण है ॥४६।

सखीबृन्द सहस्रेषु मुख्याः षोडश कीर्तिताः ।
षोडशेषु पुनश्चाष्टौ यूथेश्वर्य्यः प्रकीर्तिताः ।५०
अष्टास्वपि चतस्रस्तु श्रेष्ठाः केलिप्रवर्तिकाः ।
तासामपि पुनश्चैका मुख्या यूथेश्वरेश्वरी ।।५१

उन सहस्रों सखियों के मध्य मे सोलह सखियां मुख्य कही गई हैं, सोलह सखियों के मध्य भी-आठ यूथेश्वरियाँ मुख्य हैं। उनमें भी-चार मुख्य हैं, उन केलि क्रीडा प्रवर्तक चार सखियों में भी यूथेश्वरियों की भी ईश्वरी मुख्यतमा एक सखी है ॥ ५०-५१ ॥ श्रीचन्द्रकला १ विमला २ सुभगा ३ मदनकला ४ चारुशीला ५ हेमा ६ क्षेमा ७ पद्मगन्धा ८ लक्ष्मणा ९ श्यामला १० हँमी ११ सुगमा १२ वंशध्वजा १३ चित्ररेखा १४ तेजोरूपा १५ और इन्दिरावलीजी १६ ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियाँ है, सुन्दरीतन्त्र-अगस्त्यसंहिता हनुमत्संहिता तथा अन्य श्रीअग्रस्वामीजी के अष्टयामादि ग्रन्थों में इनका वर्णन आता है। नामभेद उनके विशेष गुणों को लेकर किसीने कुछ तो किसी ने कुछ गुण मुख्य मानकर लिखा है इसलिये नाना नामभेद से सर्वत्र इन्ही मुख्य सखियों का बोध करना चाहिये। इनमें भी प्रथम आठ नाम हैं वे

मुख्य हैं, उनमें भी श्रीचन्द्रकलाजी, १ श्रीचारुशीलाजी २ श्रीमदनकलाजी और सुभगाजी ये चार मुख्य हैं उनमें भी श्रीचन्द्रकलाजू सर्वश्रेष्ठ हैं ।

या च चन्द्रकलानाम्नी सर्वविद्याविशारदा ।
सुदक्षा सर्वकार्येषु दम्पत्योः रसवर्धिका ॥५२॥
चातुर्य्यैश्वर्य्य सौन्दर्य्य गुणैः कान्तमनोरमैः ।
लीलावैदग्ध्यभावेन सर्वाभ्यो ह्यतिरिच्यते ।५३।

सर्व विद्या विशारदा-सभी कार्यों में परमचतुरा दम्पति के रससुख को बढ़ानेवाली जो चन्द्रकला नामकी सखी हैं वह ऐश्वर्य-चतुराई-सौन्दर्य-प्रियाप्रियतमको प्रसन्न करने वाले उत्तम गुण गण तथा भाव एवं लीला वैदग्ध्यमें सभी अन्य सहचरियों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ हैं ॥५२-५३ ॥

यूथेश्वरीणां सर्वासां कामं लोकोत्तरागुणाः ।
तथाप्याज्ञां प्रतीक्षन्ति सर्वाश्चास्याः गुणोदयात्
।५४। मैथिली प्रीतीपात्रत्वात् वैलक्षण्याच्च सर्वतः।
चक्रवर्तिकुमारोऽपि तस्याः साह्यमपेक्षते ॥५५॥
वाह्यकार्येषु प्राधान्यं भरतस्य यथा मतम् ।

तथान्तरङ्ग लीलासु श्रेष्ठयमस्या मनोरमे ॥५६॥
किं बहूक्तेन ते देवि यथार्थं वच्मि तत्त्वतः।
अस्याः प्रभावं माहात्म्यं रामोवेत्ति न चापरः।५७

इति श्रीलोमश संहितायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

यद्यपि सभी यूथेश्वरियाँ दिव्य अलौकिक गुणगणों आगार ही हैं तथापि इनके गुणोंका सबसे विशेष अभ्युदय जान कर सभी इनकी आज्ञा प्राप्त करने की प्रतीक्षामें रहती हैं ॥ ५४ ॥ सभी बातों में विलक्षण तथा श्रीकिशोरीजी की परम प्रीतिपात्र होने के नाते श्रीराघवेन्द्र कुमार भी-समय समय पर इनकी सहायता की चाहना करते हैं ॥५५॥ वाह्य कार्यों में जैसे श्रीभरतलालजीका स्वतन्त्र सर्वाधिकार है प्रभुकी अन्तरङ्गलीलाओं में उसी प्रकार श्रीचन्द्रकलाजी प्रधानतामें सर्वश्रेष्ट हैं ॥ ५६ ॥ विशेष विस्तार करके कहने में क्या रखा है हे देवि। मैं वस्तुतः जो यथार्थ बात है वह कह देता हूँ कि इनका प्रभाव और माहात्मय श्रीरामजी ही जानते हैं दूसरा कोई पूर्णतः नहीं जानता ॥५७॥

इति श्रीअवध किशोर दास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' प्रणीतायां सन्तप्रिया व्याख्या समन्वितायां श्रीलोमश-संहितायां पञ्च दशोऽध्यायः ॥१५॥

❀ श्रीजानकीरसलम्पटोविजयते ❀

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीलोमश-संहिता

षोडशाऽध्यायः

ब्रह्मोवाच–

इति श्रुत्वा महाह्लाद पूरिता भूधरात्मजा।
पुनः पप्रच्छ तं देवं महेशं चन्द्रशेखरम् ॥१॥

इस प्रकार कथा सुनकर महान् आनन्दसे परिपूर्ण भूधर नन्दिनी पुनः प्रसन्नता पूर्वक देवाधिदेव चन्द्रमौलि भगवान् महादेव से पूछने लगी ॥१॥

पार्वत्युवाच--

देवदेव महेशान श्रुत्वैतत्ते वचोऽमृतम्।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ट धन्याद्धन्यतराप्यहम् ॥ २ ॥
तृप्तिराश्चर्यरूपाच्चसच्चरित्रान्नमेप्रभो।
पुनः संश्रोतुमिच्छामि कथां भुवनपाविनीम् ।३।

हे देवाधिदेव ! हे महेश ! आपके श्रीमुखचन्द्र से प्रस्र-वित दिव्य वचनामृत का पानकर मैं कृतार्थ ही गई हूँ, और हे सुरश्रेष्ठ ! धन्य-धन्य भी हो गई हूँ ॥२॥ अत्यन्त आश्चर्य स्वरूप इस सुन्दर चरित्र का श्रवण करने पर मेरामन तृप्त तो होता ही नहीं है एतदर्थ पुनः त्रिभुवन को पवित्र करनेवाली यह कथा मैं और भी सुनना चाहती हूँ ॥३॥

कदा कस्मिन्कथं लोके प्रादुर्भूता यशस्विनी ।
जन्म चास्या महत्पुण्यं कथयामरपूजित ॥४॥

हे सुर पूजित पूज्यचरण ! यह यशोमूर्ति देवी श्रीचन्द्रकलाजी किस समय—कहां पर-किस प्रकार लोकमें प्रकट हुईं यह समस्त वृत्तान्त इनके महापावन जन्म कर्म का आख्यान आप कृपा करके कथन कर सुनाइये ॥४॥

नानाकर्माग्निदग्धानां जीवानां क्लेशभागिनाम्
एतदेव परं पुण्यं जीवनं शान्तिदं स्मृतम् ॥५॥

हे देव ! नाना भांतिके कर्म भोगरूपी अग्निमें जलते हुए दुखित दीन जनों को यही एक परमपुण्यप्रद जीवनप्रद और शान्ति सुख देनेवाला उपाय है अर्थात् प्रभु और प्रभुके

प्यारे सन्त-भक्त परिकर पार्षद तथा नाम-रूप-लीला-धाम का गुणगान ही भवतापनाशक दिव्यौषध है ॥५॥

एषा हि सर्वशक्तीनामीश्वरी गुणमण्डिता ।
प्राणैः प्रियतरा नित्यं श्रीसीतारामयोः सदा ।६।
तदीय चरितं दिव्यं भुक्ति-मुक्ति प्रदायकम् ।
कथ्यतां कृपया स्वामिन् मनस्तुष्टिकरं परम् ।७।

ये तो समस्त शक्तियों की सर्वेश्वरी-सर्व गुणगणसागरी श्रीसीतारामजी को सदैव प्राणाधिक प्रियतमा हैं एतदर्थ उन का पुण्यचरित्र भी परम दिव्य-भुक्ति मुक्ति प्रदाता तथा मनको पूर्ण सन्तुष्ट करनेवाला है हे नाथ ! मुझ पर कृपाकर के आप उनका चरित्र वर्णन करके कहिये ॥ ६-७॥

श्रीशिव-उवाच--

साधु पृष्टं त्वया देवि यथावत्कथयामि ते ।
श्रीमच्चन्द्रकलायाश्च जन्माख्यानं शुभावहम् ।८।

हे देवि ! आपने परम सुन्दर प्रश्न किया श्रीमती चन्द्रकला जी का शुभद जन्माख्यान मैं विस्तार पूर्वक यथावत् आपको सुनाता हूँ, सावधान होकर श्रवण करो ॥८॥

ब्रह्माण्डगोलके ह्येषा सप्तद्वीपवती मही।
नानाश्चर्य्यमयी रम्या लोककल्प विकल्पिता।९।
ततोऽस्ति परमोरम्यो जम्बूद्वीपो महाद्भुतः।
तत्रापि भारतं वर्षं पुण्यं पुण्यजनाश्रितम्।१०।

ब्रह्माण्ड गोलक के मध्य भाग में यह सातद्वीप वाली महा विस्तृत मही है, जो अनेकों प्रकारके आश्चर्यों से भरपूर परम मनोहर तथा लोकों के सङ्कल्प विकल्प से विविध भांति से सजी है ॥९॥ उस महीमण्डल के मध्यमें भी परमरमणीय महान् अद्भुत जम्बू द्वीप है, जम्बूद्वीपके मध्य में भी अति पुण्यशाली-पवित्र मनुष्यों का आश्रयस्थान भारतवर्ष है।१०

यस्मिन्क्षेत्राण्यनेकानि पवित्राणि वनानि च।
ह्रदाश्च सरितः पुण्याः पर्वताः पुण्यभूमयः।११

जिस भारतवर्ष में अनेकों पुण्यक्षेत्र-पवित्र वनतीर्थ जलाशय पापहारी नदियाँ-पावन पर्वतश्रेणी तथा पवित्र भूमिकायें हैं ॥११॥

तस्मिन्नेषा महापुण्या मिथिलाख्या महापुरी।
विश्रुता सर्ववेदेषु ब्रह्मानन्दमयी सदा॥ १२।

यस्याः स्मरणमात्रेण नामोच्चारणतः प्रिये ।
अविद्या सहकामाद्यैः स्वैगु णै र्नश्यति ध्रुवम् ।१३

उसी भारतवर्ष में परमपाविनी श्रीमिथिला नाम की महानगरी है, जो सभी वेद शास्त्रों में प्रसिद्ध तथा सदैव ब्रह्मानन्द पूर्ण रहती है ॥१२॥ जिसके स्मरणमात्र से किंवा नाम सङ्कीर्तनादि करने से भी हे प्रिये ! कामादिक समस्त आन्तरिक दोष तथा अपने सम्पूर्ण दुर्गुणों के सहित निश्चय ही अविद्या माया नष्ट हो जाती है ॥१३॥

अप्राकृत महाश्चर्यरूपा दिव्यगुणान्विता ।
रम्योद्यानोपवनिका वापीकूप ह्रदावृता ॥ १४ ॥
योगपीठ इतिख्याता परब्रह्माभिरामदा ।
भूमेस्तिलक मित्येवं तत्त्वविद्भिरुदाहृता ॥ १५ ॥

दिव्य अलौकिक महान् आश्चर्य स्वरूपा दिव्यगुण-गणागारा रमणीय उद्यान-उपवन-वापी--कूप--तालाब नदी आदि से चतुर्दिक परिवेष्टित-परब्रह्म रसविग्रह रघुनन्दन प्रभु को परमानन्द प्रदायिनी—उस जनक पुरीको 'योगपीठ' भी कहते हैं और "पृथिवी के भाल का तिलक" कह कर तत्त्वज्ञ महा-

पुरुष वर्णन करते हैं ॥१४-१५॥

यत्र स्वर्णमयी भूमिः कमलाद्याः सरिद्वराः ।
नानामणिगणव्रात दीप्ति भासित दिग्तटाः॥१६
पूजिता मुनिभिर्नित्यं ध्येया योगविदाम्बरैः।
ध्यानमात्रेण जीवानां महानन्दप्रदायिनी ॥१७।

जहां कञ्चनमयी स्वर्णभूमि है कमलादिक श्रेष्ठ मह-- त्ववाली पुण्यनदियां हैं-नाना भांति के मणिरत्नों की दिव्य प्रभा से जिसपुरी के चारों ओर दशों दिशायें अहर्निश परम प्रकाशित हुआ करती हैं ।।१६।। जो मुनिजनों द्वारा नित्य पूजी जाती है, बड़े बड़े योगीश्वर जिसका शान्त पवित्र अन्तः करण में ध्यान धरते हैं तथा जो ध्यान मात्र से ही जीवों के दुरित नष्ट कर महा आनन्द देती है ॥१७॥

यत्र नित्यं महामोदलीलाभिः पुरुषोत्तमः ।
रमते प्रियया सार्द्धं रम्य कैशोररूपधृक् ॥ १८ ॥

जिस जनकपुर धाम में पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम की महामोदमयी मधुर लीलायें प्राणप्रियाजू के साथ परम- रमणीय किशोर स्वरूप धारण कर नित्य ही किया करते

हैं ॥ १८ ॥

देवरूपाः नरा यत्र धर्मशीला जितेन्द्रियाः।
ज्ञान विज्ञान सम्पन्ना महापौरषिका यथा ॥१९॥

जिस मिथिला पुरी में निवास करने वाले सभी पुरुष देवता स्वरूप धर्मशील-जितेन्द्रिय ज्ञान विज्ञान सम्पन्न तथा दिव्य महाविभूति में स्थित प्रभु परिकर एवं पार्षदों की भांति अनन्य भगवत्परायण हैं ॥ १९ ॥

नार्य्यः शुद्ध सदाचारा धर्मतत्त्व निदर्शिकाः।
लोकोत्तरगुणैः पूज्याःश्लाध्यादेवीभिरुत्तमाः।२०

जिस विदेहनगरी में वसनेवाली नारियां भी परम विशुद्ध सदाचार परायणा-धर्मतत्त्वका बोध देनेवाली-लोकविलक्षण दिव्यगुण मण्डिता देवताओं की स्त्रियों द्वारा प्रसंसित तथा परम उत्तम स्वभाववाली हैं ॥ २० ॥

वसन्ति यत्र राजानो निमिवंशोद्भवाः शुभाः।
विस्तीर्ण कीर्तयः शुद्धा योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।२१।

जिस जनकपुर में निमिकुलरत्न विशुद्ध हृदय वाले-

तत्त्वद्रष्टा-योगीश्वर तथा विस्तृत विपुल यशसम्पन्न राजा लोग निवास करते हैं ॥ २१ ॥

यत्र शीरध्वजो राजा विदेहानां शिरोमणिः।
योगिवर्य्यः पुण्यकीर्तिस्तत्त्वज्ञैः समुपासितः।२२
ब्रह्मानन्द रसास्वाद पूर्णः परम तत्त्ववित्।
लोकचारित्रवेदज्ञो गूढ स्नेहः परेश्वरे॥ २३ ॥
यस्य भावविपाकेन प्रसन्ना जगदीश्वरी।
पुत्रित्वमागता चक्रे लीलाः भुवन पावनीः।२४।

जिस परमपावन मिथिलानगर में योगीवर्य्य-पवित्र यशस्वी-तत्त्वज्ञों द्वारा सम्मानित-ब्रह्मानन्द रस भोक्ता-परमतत्त्वज्ञ परमेश्वर के प्रति गुढ स्नेह रखने वाले-लौकिक वैदिक सकल क्रिया कलाप पाराङ्गत- विदेहों के शिरोमणि श्रीशीरध्वजजी महाराज निवास करते हैं। जिसके हार्दिक प्रेमभाव से प्रसन्न होकर जगज्जननी श्री जानकीजी पुत्रित्व स्वीकार कर भुवन पाविनी लीला करने को अवतीर्ण हुई ॥२२-२३-२४॥

स्वर्णरोम्नस्तु राजर्षेः पुत्रः सुव्रतसंज्ञकः।
तस्यभार्याच श्रीभावा तयोः पुत्रःप्रतापवान्।२५
चन्द्रभानुरिति ख्यातः सुशीलः सर्वरञ्जकः।
भार्या चन्द्रप्रभा तस्य साध्वी सर्वगुणालया।२६।

राजर्षि स्वर्णरोमा महाराज के ह्रस्वरोमा और सुव्रत नाम के दो पुत्र हुए। ह्रस्वरोमा महाराज के पुत्र शीरध्वज महाराज हुए तथा श्रीसुव्रत की भावा नाम की भार्या से चन्द्रभानु नाम के एक प्रतापी पुत्र हुए। उन्हीं सुशील सर्वप्रिय चन्द्रभानु महाराज की सर्वगुणाढ्य परमसाध्वी चन्द्रप्रभा नाम की भार्या हुई ॥ २५-२६ ॥

परस्पर दृढस्नेहौ दम्पती धर्मतत्परौ।
एकराशि स्थितौ चोभौ भक्तिमन्तौ परेश्वरे ॥२७॥
नारदेन यदादिष्टो विदेहो मिथिलाधिपः।
चकाराराधनं शक्तेराद्यायाः तपसिस्थितः ॥२८॥
तदेव हिमवत्पार्श्वे सर्वतोऽतिश्रिया वृते।
चन्द्रभानुरपि प्रीत्या भार्यया तुल्यशीलया ॥२९
याज्ञवल्क्योपदिष्टेन मार्गेण विजितेन्द्रियः।
तेपे सर्वसहः श्रीमांस्तपः परम दुष्करम् ॥३०॥

दोनों परस्पर दृढ़ स्नेह रखने वाले-धर्मपरायण-प्रभु के चरणों में श्रद्धा भक्ति रखने वाले तथा एकराशि स्थित नाम वाले थे ॥ २७ ॥ जब मिथिलाधीश्वर विदेह महाराज

नारदमुनि का उपदेश ग्रहण कर आद्याशक्ति जगदीश्वरी का आराधन करते तप में स्थित हो गये ॥ २८ ॥ तभी ये दोनों दम्पति भी हिमालय के रमणीय प्रदेश में याज्ञवल्क्य मुनि के उपदेश से जितेन्द्रिय होकर महादुस्कर तप करने लगे ॥ २९-३० ॥

ततः प्रसन्नतां जातौ सीतारामौ परेश्वरौ ।
प्रादुर्भूतौ वने तस्मिन् दम्पत्योःप्रेम गोचरौ ।३१
कोटिसूर्यप्रतीकाशौ कोटि चन्द्रसुशीतलौ ।
ह्लादयन्तौ कृपा दृष्ट्या तपःशीलौ तु दम्पती ।३२

तप करने से परात्पर प्रभु श्रीसीतारामजी उन दोनों पर परम प्रसन्न हो गये, उस वन में राजदम्पति के सम्मुख प्रेम के वशीभूत प्रभु प्रकट हुए, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान् तथा कोटिचन्द्र के समान सुशीतल हृदयानन्द देने वाले युगल प्रभु तपोनिष्ठ दम्पति को अपनी मधुमयी कृपादृष्टि से आनन्द देने लगे ॥ ३१-३२ ॥

ततस्तदद्भुतं रूपं दृष्ट्वा प्रेम्णाथ विह्वलौ ।
नेमतुः परया भक्त्या कृतार्थौ हृष्टमानसौ ।३३।

ततस्तुष्टुवतुश्चौभौ प्रेमगद्गदया गिरा।
वाङ्मनोगोचरातीत ब्रह्मभावेन चासकृत्॥३४

तब उस परमअद्भुत दिव्य स्वरूप का दर्शन कर प्रेम विह्वल दोनों दम्पति हृदय में परम प्रसन्न होकर अत्यन्त श्रद्धाभक्ति पूर्वक युगल प्रभु के श्रीचरणारविन्दों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करके प्रेम से गद्गद कण्ठ हो गये, मन-वाणी इन्द्रियातीत उस दिव्य रूप माधुरी का रसास्वादन कर बार-बार ब्रह्मभावना पूर्वक प्रणाम और प्रार्थना करने लगे॥ ३३-३४॥

तयोस्तां परमां प्रीतिं दृष्ट्वा सर्व जगन्मयी।
रामप्रिया चिदानन्द मूर्तिःप्रोवाच सादरम्॥३५॥

उन दोनों की इस प्रकार परमप्रीति देखकर सर्व जगन्मयी-सच्चिदानन्द मूर्ति श्रीरामप्रियाजू आदर पूर्वक उनको परमानन्द प्रदान करती बोली॥ ३५॥

श्रीसीतोवाच–

प्रीताहं वां महाभागौ तपसानेन तोषिता।
वरञ्च व्रियतां मत्तो युवाभ्यां यद्विभावितम्॥३६

हेश्रीचन्द्रभानु ! तथा हे श्रीचन्द्रप्रभा ! आप दोनों पर मैं परम प्रसन्न हूँ, आपकी इस कठिन तपस्या से हे महा-भाग्यवन्त ! मैं दर्शन देने आई हूँ, आपके मनमें जो प्रिय लगता हो वह बरदान आप दोनों आज मुझसे प्रेमपूर्वक माँग लीजिये ॥३६॥

वचस्तदमृतास्वादं निपीय श्रुति सम्पुटैः ।
हर्षपूरित सर्वाङ्गावूचतुः स्वात्मचिन्तितम् ॥३७॥
यदि पूज्ये प्रसन्ना नौ दातुमिच्छसि वै वरम् ।
पुत्री तु भवती तुल्या भवेत्कामः परो हि नौ ।३८

सुधावृष्टि के समान परमानन्ददायक मधुर वचनों का रसास्वादन कर सर्वाङ्ग हर्ष पूरित दम्पति हाथ जोड़कर विनयभावसे बोले-हे देवि ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं और बरदान देना चाहती हैं तो हमारे मनमें तो यही पुनीत अभि-लाषा है कि "आपके ही समान एक पुत्री हमको भी हो यही महान् कामना हमारे मनमें है ॥ ३७-३८-

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा सा सर्वं जगदीश्वरी ।
उवाच परया प्रीत्या कृपामूर्तिः शुचिस्मिता ३९।

विदेहेन वृता पूर्वं पुत्रीभावेन मानदौ।
तस्माच्चन्द्रकला चेयं गृहे वामुत्पतिष्यति ॥४०॥
मामकी चापरा मूर्तिः प्रिया यूथेश्वरीमता।
सदृशी मदभिन्नाथ पूरयिष्यति वाञ्छितम् ॥४१॥

उनके इस वचन को सुनकर वह समस्त ब्रह्माण्डाधीश्वरी कृपामूर्ति श्रीराजकिशोरी जी मन्द-मन्द हँसते हुए बड़े प्रेमसे बोली हे मानप्रद ! विदेह महाराजा जनक जी ने हमको पहले ही पुत्री रूपसे वरण कर लिया है इसलिये मेरी प्रियसखी यह चन्द्रकलाजी आपके घर प्रगट होगी। यह मेरी ही दूसरी प्रतिमा है, अत्यन्त प्रिय है, सभी सहचरियों की यूथेश्वरीयों की माननीया मेरे ही समान है और मेरी अभिन्नहृदया सहेली है, यह आपका मनोभिवाञ्छित सभी सुख पूर्ण करेगी ॥ ३९-४०-४१ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मनोभिलषितं ध्रुवम्।
लब्ध्वा प्रहृष्ट सर्वाङ्गौ प्रणपादूचतुः पुनः ॥४२॥

अहो नौ जन्म साफल्यं भवेस्मिन्नति दुस्तरे ।
श्रीमतो दर्शनं प्राप्तं लब्धोऽयं दुर्लभो वरः ।४३

इस प्रकार श्री श्रीजूका वचन सुनकर तथा मनमाना दुर्लभ बरदान लाभकर सर्वाङ्ग हर्षित पूर्ण मनोरथ दम्पति प्रणय पूर्वक पुनः प्रणाम कर विनीत बचन बोले ॥ ४२ ॥ हे पूज्यतमे ! आज हमारा जन्म सफल होगया, इस दुस्तर भवसागर से हम तर गये जो आपका दिव्य दर्शन और दुर्लभ बरदान हम को प्राप्त हुए, आपकी इस महती कृपा का सदैव जय जयकार हो ॥ ४२-४३ ॥

इति दत्वा वरं देवी ततः स्वपतिना सह ।
अन्तर्द्धानं जगामाथ स्तूयमान शिवादिभिः।४४।
जग्मतुर्मिथिलां तौ तु हृष्टौ प्राप्त मनोरथौ ।
उषतुः स्वगृहे तत्र चिन्तयानौ मनेप्सितम् ॥४५।

इति श्रीलोमश संहितायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीचन्द्रभानु और श्रीचन्द्रप्रभाजी को बरदान देकर शिवब्रह्मादि वन्दित सर्वेश्वरी श्रीजानकी जी

अपने पति परब्रह्म प्रभु-श्रीरामजी के साथ अन्तर्ध्यान हो गई ॥ ४४ ॥ सफल मनोरथ वरदान प्राप्त कर परम प्रसन्न राजदम्पति मिथिलापुर में आये और अपना अभीष्ट फल कब प्राप्त होगा इस बातका अहर्निश स्मरण करते हुए अपने घर में निवास करने लगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीअवध किशोर दास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' प्रणीतायां सन्तप्रिया व्याख्या समन्वितायां श्रीलोमश-संहितायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

❀ श्रीचन्द्रकलाप्राणवल्लभायैनमः ❀

❀ श्रीचन्द्रकलाप्राणप्रियतमायनमः ❀

नमः श्रीमते रामानन्दाचार्याय सर्वाचार्यशेखराय

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीलोमश-संहिता

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशिवोवाच—

ततो बहुतिथे काले गते तस्मिन् सुखावहः ।
वसन्तः समनुप्राप्तः सर्वसत्व मनोहरः ॥ १ ॥
पुष्पितास्तरवः सर्वे मञ्जरी पुञ्जधारिणः ।
कोकिलाकुल सन्नाद स्तवका वनराजयः ॥२
लताः कुसुमिताःसर्वा नव पल्लव शोभिताः ।
मधु लुब्धा मधुकरा विगुञ्जन्ति समन्ततः । ३
प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा ह्लादितस्थिर जङ्गमाः ।
मनांस्यासन् प्रसन्नानि सर्वेषां पुरवासिनाम् ४
विदेहनगरश्चासौ दिव्यसम्पत्सुखान्वितः ।
अपूर्वैव विभातिस्म ब्रह्मज्योतिरिव स्वयम् । ५ ।

तत पश्चात् बहुत समय बीतने पर पुनः परम सुखावह समय उस विदेहपुरी में आया, सभी जीवों को सुख देनेवाले बसन्त ऋतु के आगमन होते ही सभी वृक्ष नवीन पत्र और पुष्पों से सुशोभित हो गये, मञ्जरियों के समूह वीरुधों (पौधाओं) पर प्रकट हो गये, कोकिलाओं के दलोंकी कुहुकार से वन पंक्तियां भर गईं, पुष्पों के गुच्छे के गुच्छे डालियों में लटकने लगे, वन लताऐं फूलने फलने लगी, पुराने पत्ते झड़ गये और नवीन चिकने चमकीले पत्ते निकल आये, मधु लोलुप भ्रमर दशों दिशाओंमें गुञ्जार करने लगे, सबके मन प्रसन्न हो गये, पुरवासी स्थावर-जङ्गम सब के हृदय आनन्द से भर गये, सभी दिशा-विदिशायें परम सुन्दर लगने लगी विदेहनगर उस समय दिव्य सम्पति से परिपूर्ण हो गया, स्वयं प्रकाशित ब्रह्मज्योतिके समान यह जनकपुर धाम अपूर्व शोभा देने लगा ॥ १-२-३-४-५ ॥

सुपुण्ये माधवे मासि शुक्लपक्षेऽति सोभने ।
चतुर्दश्यां तिथौ पुण्ये नक्षत्रे स्वाति संज्ञके॥६॥
मध्याह्नेऽभिजिति प्राप्ते मध्यव्योम्नि दिवाकरे।
दिव्य दुन्दभि सन्नादे पुष्पवृष्टि निरन्तरे ॥ ७

आकाशे देवसंघानां विमानावलिभिर्वृते ।
स्तुवत्सु देव देवेषु ब्रह्मादिषु विभागशः ॥ ८ ॥

परम पवित्र वैशाख मास शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को अति पावन स्वाति नक्षत्र में मध्यान्हकालमें अभिजित् मुहूर्त जब प्राप्त हुआ तब आकाशमें विमानों में वैठकर देवता लोग दुन्दभी का नाद करने लगे, सुरद्रुम सुमनावली बरसाने लगे, ब्रह्मादिक प्रधान-प्रधान देवता अपने-अपने लोकनिवासियों का विभाग बनाकर क्रमशः श्रद्धा समेत स्तुति गान करने लगे, ॥६-७-८ ॥

चन्द्रभानुगृहे रम्ये महार्हे मणिचित्रिते ।
चन्द्रप्रभायामुत्पन्ना कन्या कल्याणदा सताम् ।६
दिव्य लक्षण सम्पन्ना प्रसन्ना कंजलोचना ।
स्वयैव प्रभयाकामं भासयन्त्यखिलं जगत् ॥ १०

उस पुण्यवेला में रत्नमणि मण्डित महाराज चन्द्रभानु के घर में महारानी चन्द्रप्रभाको सज्जनों का कल्याण करने वाली एक कन्या उत्पन्न हुई ॥६॥ समस्त दिव्य लक्षणों से सम्पन्ना-प्रसन्न वदना कमल लोचना वह कन्या अपनी देहकान्ति से ही समस्त जगत् को प्रकाशित करने लगी ॥१०

कान्त्या कान्तिं क्षिपन्ती सा सर्वेषां दीप्तिकारिणाम्
ब्रह्मानन्द रसाह्लादैः पूरयन्ती सुचेतसः ॥११॥
प्रकाशपटलाक्रान्तं तदन्तःपुरमाबभौ ।
आनन्द सम्प्लवाकीर्णं मनोवृत्तिजन प्रियम् ।१२

अपनी महाप्रभापूर्ण कान्ति किरणोंसे वह समस्त तेजस्वी चेतनों का तेज को ढाक देती भई और सभी चेतनों के अन्तः करणमें ब्रह्मानन्दरसका उल्लास परिपूर्ण करने लगी ॥ ११ ॥ प्रकाश पुञ्ज से महाराज चन्द्रभानुका अन्तः पुर देदिप्यमान हो गया तथा अपनी-अपनी भावनानुसार सभी आनन्द की उस बाढ़में निमग्न हो गये॥ १२ ॥

स्वात्मजामीदृशीं दृष्ट्वा राज्ञीचन्द्रप्रभा शुभा।
हर्षजाश्रुपरीताक्षी-शुशुभे भूरितेजसा ॥१३।

महाराणी श्रीचन्द्रप्रभा ऐसी लोकोत्तर कन्या हमारे घर प्रकट हुई है यह जानकर परम प्रसन्न हुई, हर्षके कारण नेत्रों में प्रेमाश्रु छलकने लगे और दिव्य कान्तिसे स्वयं परम तेजस्वी तथा अत्यन्त शोभावती लगने लगी॥ १३ ॥

चन्द्रभानुर्महाभागो तां जाता परिबुध्य च ।
ब्रह्मानन्द निमग्नोऽसौ न सस्मार निजं परम् ।१४

महाभाग्यशाली महाराजा श्रीचन्द्रभानु ने जब यह जाना कि वरदानमें जिनकी याचना की थी वही देवी हमारे घर प्रकट हुई है तब ब्रह्मानन्द रससिन्धु में मग्न हो गये उन्हों ने अपना पराया अन्य कुछ भी स्मरण न किया। १४

धैर्य्यमालम्ब्य सुप्रीतः आजुहाव प्रियं जनम्।
श्रावयामास तज्जन्मं परमानन्ददायकम् ॥१५॥

कुछ समय के वाद धैर्य धारण कर प्रसन्नात्मा महाराज चन्द्र भानु ने परमानन्द दायक अपनी कन्या के जन्म का सुन्दर सम्वाद प्रियजनों को बुलाकरसुनाया ॥ १५ ॥

विदेहाधिपति स्तस्मिन्काले स्वजन संवृतः।
कारयामास वैदेह्या द्विजैः षष्ठीमहोत्सवम् ॥१६।

विदेहाधिपति महाराज जनक जी ने उसी समय अपने बंधु वान्धव स्वजनों के साथ ब्राह्मणों द्वारा अपनी पुत्री का छट्ठी महोत्सव विधिपूर्वक मनाया ॥ १६॥

शतानन्दादिभिर्हृष्टः स्वस्तिवाचन पूर्वकम्।
पूजयन्सर्व पूजार्हान् देवानग्निपुरोगमान् ॥१७

वनिता शीलसम्पन्ना रूपवत्यः स्वलङ्कृताः ।
गायन्तिगीतान्माङ्गल्यान्कुर्वन्त्यःकौतुकान्यलम् १८

शतानन्दादि कुलपूज्य विप्रों द्वारा प्रसन्न चित्तसे स्व-स्तिवाचन पूर्वक माङ्गलिक कृत्य करके सभी पूज्यों का पूजन किया, अग्नि को आगे करके आये हुए समस्त देवताओं का पूजन किया ॥ १७ ॥ रूपवती सोलहों शृङ्गार से सजी-धजी शीलसम्पन्न कुलवान् वनितायें उस समय माङ्गलिक गीत गा-गाकर नाना प्रकार के कौतुक करने लगी ॥ १८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वैः श्रुतं जन्म महोत्सवम् ।
चन्द्रभानोः सुतायाश्च परमानन्ददायकम ॥ १९ ॥

इसी बीच में सभी ने वहां पर परमानन्ददायक श्रीचन्द्र-भानु कुमारीजी का जन्म महोत्सव श्रवण किया ॥ १९ ॥

विदेहस्तु प्रहृष्टात्मा जगाम स्वजनैः सह ।
शतानन्दादिभि र्विप्रै श्चन्द्रभानो र्गृहं शुभम् ।२०

श्रीविदेह महाराज यह आनन्द समाचार सुनकर तुरन्त अपने महोत्सव में आये हुए स्वजन तथा श्रीशतानन्द प्रमुख विप्रों को साथ लेकर श्रीचन्द्रभानु जी के घर पधारे ॥२०॥

आगतं भ्रातरं दृष्ट्वा चन्द्रभानु नृपोत्तमः।
पूजयामास विधिवत्पाद्यार्घ्यासन वन्दनैः॥२१॥

नृपश्रेष्ठ चन्द्रभानु महाराज ने अपने भाई को आते देखकर बड़े आदर से अर्घ्य-पाद्य-आसन-वन्दनादि द्वारा सभाज समेत प्रेमपूर्वक उनका सत्कार किया और हाथ जोड़ कर उनके प्रति बोले ॥ २१ ॥

श्रीचन्द्रभानुरुवाच

अद्य जन्म कृतार्थं मे लब्धं यदिह दुर्लभम्।
कृपया ते महाभाग सुता जाता यशस्विनी॥२२॥
यथा ते चीर्णतपसः फलरूपा परात्परा।
शक्तिराह्लादिनी लब्धा कन्यारूपेण मानद।२३
तथा मयापि तद्भक्त्या पूर्वेषां पुण्ययोगतः।
तदङ्गभूता सम्प्राप्ता कन्येयं कुलतारिणी॥२४॥

हे महाभाग्यवन्त! आज मेरा जन्म कृतार्थ हो गया आज दुर्लभ पदार्थ यहां सुलभ होकर प्राप्त हुआ, आपकी कृपा से मेरे घर एक यशस्विनी कन्या प्रादुर्भूत हुई है ॥२२॥ जैसे आपके महान् तप के फलस्वरूप परात्परा आद्याशक्ति

आह्लादिनी देवी आपके घर कन्या स्वरूप धारणकर प्रकट हुई हैं ॥ २३ ॥ हे मानप्रद ! उसी प्रकार मैंने भी उन्हीं पवित्र ब्रह्माण्डनायिका पुज्या महाशक्ति का भक्तिपूर्वक आराधन कर पूर्वजों के पुण्य प्रताप से उन्हीं की अङ्गस्वरूपा कुलतारिणी यह कन्या प्राप्त की है ॥ २४ ॥

तामहं प्रीतियोगेन वैदेह्याश्चरणार्चने ।
सुतां समर्पयाम्यद्य कृतार्थेनान्तरात्मना ॥२५॥

हे भ्राता ! उसी कन्या को प्रीतिपूर्वक विदेह राजकुमारी जू की चरण सेवा करने के लिये कृतार्थ होकर सच्चे अन्तः करण की भावना से आपको समर्पण करता हूँ ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा जनकं प्रीत्या शतानन्द पुरःसरैः ।
विप्रैः स कारयामास जातकर्मादिकां क्रियाम् ।२६

इस प्रकार श्रीविदेह महाराज को कहकर प्रेमपूर्वक शतानन्द प्रमुख ब्राह्मणों द्वारा जातकर्मादिक क्रिया चन्द्रभानु महाराज विधिपूर्वक कराई ॥ २६ ॥

जनकोऽपि महातेजा ददौ दानानि भूरिशः ।
कृत्वा नान्दीमुखं श्राद्धं विधिमन्त्र पुरस्कृतम् ।२७

श्रीजनक जी महाराज ने भी शास्त्र विधिपूर्वक नान्दी-मुख श्राद्ध करके सबको बहुत सा दान दे-देकर संतुष्ट किये॥२७

निमिवंशोद्भवाः सर्वे जहृषु स्तेन कर्मणा।
कुलवृद्धा स्तरुण्यश्च तथा पौरस्त्रियोऽपराः॥२८॥
जगुः कलञ्च गीतज्ञा ननृतुश्च तथा परा।
सर्ववाद्यान्यवाद्यन्त वर्त्तते च महोत्सवः॥ २६ ॥

सभी निमिवंशी--उस महाआनन्द को प्राप्तकर प्रसन्न हुए कुल वृद्ध—तरुणी नारी तथा पुर नरनारियां भी उस दान दक्षिणादि शुभ कर्म को देखकर हर्षित हुईं, गीत विशारद गीत गाने लगे, बाजा वाले सभी बाजाओं का तालस्वर मिलाकर एक साथ बजाने लगे तथा नृत्य करने वाले नाचने लगे, उस महोत्सव के आनन्द में मग्न सभी अपने क्रिया कलाप द्वारा महोत्सव का विस्तार करने लगे॥ २८-२९ ॥

पुष्प वृष्टिश्च देवानां दुन्दुभीनां च निःस्वनः।
पृथिवी पूरयामास दिवं सर्वादिशस्तथा॥ ३०।
उत्सवस्तु महानेष सर्वेषां पुरवासिनाम्।
ह्लादयामास गात्राणि मनांसि च विशेषतः।३१

उस महोत्सव के अवसर पर देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि तथा दुन्दभीनाद से दशों दिशायें-पृथ्वी तथा आकाश भर गया ॥३०॥ इस महान् मंगलोत्सव ने समस्त पुरनिवासियों के तन-मन हृदय में आनन्द परिपूर्णकर सबका उल्लास बढ़ा दिया ॥ ३०-३१ ॥

मागधाः वन्दिनः सूतास्तथैव नटनर्तकाः ।
तर्पिता भूरिदानेन मानेन च यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥

मागध-वन्दिजन-सूत-नट-नर्तक सभी दान सम्मान पाने वाली जातियों के लोगों का महाराज श्रीचन्द्रभानु ने अतिशय दान दे-देकर पूर्ण रीति से तृप्त कर दिये ॥ ३२ ॥

ततो द्वादश संख्याके दिवसेऽति मनोहरे ।
चकार नामकरणं सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिर्वृतः ॥ ३३ ॥
याज्ञवल्क्यं समाहूय शतानन्दादिभिर्युतम् ।
अर्चयित्वा यथान्यायमुवाच प्रयतात्मवान् ॥ ३४ ॥

तब मनोहर जन्म के बारहवें दिन अपनी ज्ञाति के स्वजनों के सहित नामकरण संस्कार करने के लिये शतानन्द प्रभृति ब्राह्मणों के समेत महर्षि याज्ञवल्क्यजी को बुलाकर

उन सबकी विधिपूर्वक यथोचित पूजा करके अत्यन्त साव-धानी से प्रेमपूर्वक श्रीचन्द्रभानु जी हाथ जोड़कर विनीत वचन बोले ।। ३३-३४ ।।

श्रीचन्द्रभानुरुवाच-

सुतायां नामकरणं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।
त्वंहि वेदविदां श्रेष्ठः सर्वज्ञ स्तत्त्वविन्मतः ।। ३५।।

हे पूज्यतम ! आप समस्त वेद विशारदों में श्रेष्ठ हो, सर्वज्ञ हो तथा तत्त्वद्रष्टाओं में शिरोमणि हो हे सुव्रत ! अतएव मेरी इस अलौकिक कन्या का नाम करण करने की योग्यता भी आप में ही है हे प्रभो ! कृपा करके आप इसका नामकरण संस्कार सम्पन्न करा दीजिये ।। ३५ ।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य चन्द्रभानोर्महामुनिः ।
क्षणंध्यात्वा प्रहर्षेण प्रवक्तुमुपचक्रमे ।। ३६ ।।

श्रीचन्द्रभानु महाराज का ऐसा प्रेमरसपूरित वचन सुनकर महामुनि ने क्षण भर ध्यान कर सब बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा अति आनन्द पूर्वक बोलने का विचार किया ।। ३६ ।।

श्रीयाज्ञवल्क्यउवाच-

अद्भुतेयं सुता राजन् महाभाग्येन ते गृहे।
जाता ब्रह्मादिभि र्देवै र्वन्द्यमान पदाम्बुजा।३७।

हे राजन्! वास्तव में परम अलौकिक यह कन्या महान् भाग्योदय के फलस्वरूप तुम्हारे घर में प्रकट हुई है, ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा इसके चरण कमल सदैव पूजित होते हैं॥ ३७॥

यस्मादाह्लादयेत्येषा महत्या प्रभया स्वया।
पूरयत्यखिलं विश्वमचिन्त्यैश्वर्य वैभवा॥ ३८।
तस्माच्चन्द्रकलेत्यस्या नामसिद्धं पुरातनम्।
सर्वसिद्धिकरं नृणां जपतां कामभूरुहम्॥३६॥

यह आपकी कन्या अपनी महान् प्रभा से समस्त विश्व को आह्लादित करती है तथा अचिन्त्य ऐश्वर्य-वैभवपूर्ण समस्त संसार को पूर्ण करती है॥ ३८॥ इसलिये इनका श्रीचन्द्रकला यह नाम सनातन है और प्रसिद्ध है, सर्व समृद्धि को परिपूर्ण करने वाला तथा जप करने वालों को कल्प वृक्ष की भाँति कामना सिद्ध करने वाला है॥ ३९॥

य एतस्यां महाभागा प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
भुक्तिं मुक्तिं परां सिद्धिं लभन्ते नात्र संशयः ।४०
पराभक्तिरसास्वाददात्रीयं चरणार्चिनाम् ।
नानाकेलिरसाभिज्ञाचार्या चातुर्य्य मण्डिता ।४१

जो कोई महाभाग्यवन्त इनके चरणों में प्रीति करेंगे वे मनुष्य भुक्ति मुक्ति तथा परमसिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होंगे, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४० ॥ अपने चरणोपासकों को पराभक्ति का रस आस्वादन करानेवाली-नानाविध केलिकौतुक में निपुण-चतुरता का भण्डार तथा शृङ्गार रस की आचार्या यह आपकी कन्या होगी ॥ ४१ ॥

सर्वेषामपियूथानामीश्वरीयं भविष्यति ।
अतः सर्वेश्वरीख्याता सखीनां भुवनत्रये ।।४२।
विदेहात्मजयाऽद्वैतभावमेषा गमिष्यति ।
चक्रवर्त्तिकुमारोस्याः पतिः कश्चिद्भविष्यति ।४३।
युस्माकं कुलकीर्तेश्च विस्तारो भविताऽनया ।
तस्माद्राजसुतामेनां पूजयस्व समाहितः ॥४४॥

समस्त सखियों के यूथेश्वरियों की यह इश्वरी होगी ।इसलिये

तीनों भुवन सखिसमाज में यह 'सर्वेश्वरी' नाम से प्रसिद्ध होगी। श्रीविदेह राजकुमारी जू के साथ इनका अभेद भाव रहेगा, कोई चक्रवर्ति राजकुमार इनके पति होंगे। आपकी और आपके कुल की कीर्ति का विस्तार इनके ही द्वारा होगा अतएव हे राजन्! अपनी इस राजकुमारी का प्रेमपूर्वक पूजन मन लगाकर किया करो॥ ४२-४३-४४॥

एतस्मिन्नन्तरे वेदाश्चत्वारो बन्दिरूपिणः।
उपतस्थुः समाज्ञाय तस्या जन्म महोत्सवम्।४५
सत्कृता राजराजेन विदेहेन शुभात्मना।
चक्रुर्गानं विशेषज्ञाःकन्यामाहात्म्य सूचकम्।४६

इसी बीच में चारों वेद श्रीचन्द्रकला जी का जन्म महोत्सव का समय जानकर वन्दिजनों के रूप धारण कर वहाँ आये।॥ ४५॥ श्रीविदेह महाराज ने उनका प्रेमपूर्वक आदर सत्कार किया, सर्वज्ञानागार उन चारों वेदों ने कन्या के माहात्म्य को प्रकट करने वाला स्तुति गान प्रारम्भ किया॥४६

वेदाऊचुः-

धन्योऽसि नरशार्दूल न कोऽपि सदृशस्तव।
सुतां शशिप्रभां लब्ध्वा पूज्योऽसि भुवनत्रये ॥४७

ब्रह्माद्यै र्योगिवर्य्यैर्या चिन्त्यते शुद्धमानसैः।
ब्रह्मशक्तिः पराह्लादरूपिणी सर्वगाद्भुता ॥४८॥

हे नरशार्दूल ! आप धन्य हैं, आपके समान आज दूसरा कोई भाग्यशाली नहीं है, श्रीचन्द्रकला जैसी कुमारी पाकर आप तीनों भुवनों में पूज्य हो गये ॥ ४७ ॥ ब्रह्मादिक योगीवर्य्य जिनका शुद्ध अन्तःकरण में सदा चिन्तवन करते हैं वही परम अह्लाद स्वरूपा-सर्वगता अद्भुत ब्रह्मशक्ति आपके घर प्रकट हुई है ॥ ४८ ॥

स्वाहा-स्वधा-रतिः कीर्तिर्देवपत्न्यश्च सर्वशः।
सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्चब्रह्मादीनाञ्च शक्तयः॥४९
अस्या नखप्रभाजाताःपूज्यते सिद्धिकाङ्क्षिभिः
अतः श्रीचन्द्रभानोश्च सुतेयं गुणमण्डिता ।५०।

स्वाहा-स्वधा-रति-कीर्ति-अणिमादिक सिद्धियां-ब्रह्मादिक देवताओं की प्रमुख शक्तियों-तथा सर्वोत्तम देवपत्नियां सब इनके चरणनख की प्रभा से प्रकट हुई हैं, सिद्धिचाहने वाले इनकी पूजा करते हैं । इसलिये श्रीचन्द्रभानु महाराज की यह कन्या समस्त गुणगणों से अलंकृत हैं ॥ ४९-५० ॥

रूपतो गुणतः शीला स्वभावान्मैथिली समा।
तस्मात्सहचरीभावं वैदेह्या लप्स्यसे ध्रुवम् ॥५१॥
सर्वयूथेश्वरी भूत्वा सर्वपूज्या भविष्यति।
स्वाश्रितानाञ्च भक्तानां रसराज प्रदायिनी॥५२

रूप-गुण-शील और स्वभाव में यह श्रीमैथिली जू के समान ही है, इसलिये श्रीविदेह राजकुमारी जू का सहचरी भाव यह अवश्य ही प्राप्त करेगी। उनकी सभी सखियों में सर्वेश्वरी होकर सर्वपूज्या बनेगी तथा अपने आश्रितों को रसराज शृङ्गार रस का सुख प्रदानकर कृतार्थ करेगी ॥५१-५२

इति वन्दिवचः श्रुत्वा राजा परमहर्षितः।
नाना वस्त्राणि रत्नानि प्रदातुमुपचक्रमे ॥५३।
न जगृहुश्च ते सर्वे समूचुर्नृपसत्तमम्।
किमेतैः रत्नवस्त्राद्यैःकृतार्थास्तवदर्शनात् ॥५४।

वन्दिजनों के ऐसे प्रिय वचन सुनकर राजा परम प्रसन्न होकर वस्त्र-रत्नादि नाना प्रकार की वस्तुएं उनको देने लगे, परन्तु उन वन्दिजनों ने कहा कि हे राजन्! इन रत्न और वस्त्रों को लेकर हम क्या करेंगे? हम तो आपके दर्शन मात्र से ही कृतार्थ हैं ।५३-५४॥

उभे कन्ये च द्रक्ष्यामस्तदा भाग्यं परं हिनः ।
तस्माद्दर्शय राजेन्द्र तेन सर्वं लभामहे ॥ ५५ ॥
नातः परतरो लाभस्तयोश्चरणदर्शनात् ।
इत्युक्त्वा विरताः सर्वे वेदास्तत्त्व स्वरूपिणः।५६

यदि आपकी हमारे ऊपर पूर्ण कृपा है तो आप अपनी दोनों कन्याओं का दर्शन करा दीजिये, हे राजेन्द्र ! उनका दर्शन मिला तो हम सर्वस्व पा चुके, हम आपकी दोनों कन्याओं के चरण दर्शन से बढ़कर और कुछ भी लाभ नहीं जानते हैं। ऐसा कहकर तत्त्वस्वरूप विग्रहधारी चारों वेद मौन हो गये ॥ ५५–५६ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विदेहो मिथिलाधिपः ।
चन्द्रभानुश्च सुप्रीत्या दर्शयामासतुः सुते ॥५७॥
तयोर्दर्शन संहृष्टा वेदाः प्राप्य मनोरथम् ।
प्रणेमुः परया भक्त्या ह्यनुज्ञाप्य ययुर्दिवम् ।५८

उनके प्रेम भरे वचनों को सुनकर मिथिलाधिराज श्रीविदेह महाराज और श्रीचन्द्रभानु महाराज ने अपनी-अपनी कन्याओं का उनको दर्शन कराया । उन वेदों ने

अलौकिक राज कन्याओं का दर्शन किया, मनोरथ सफल होने से परम प्रसन्न हुए और आज्ञा प्राप्त कर दिव्यलोक में चले गये ॥ ५७-५८ ॥

गतेषु वन्दिवर्य्येषु चन्द्रभानु र्महामनाः ।
ब्राह्मणान्भोजयामास ज्ञातिबन्धून् सुहृद्वृतः ।५६
ददौ दानानि विप्राणां गाः सुवर्णञ्चसादरम् ।
ज्ञातयः सत्कृताः सर्वे पौराश्चैव यथार्हतः ॥६०।

वन्दिवर्य्य जब स्तुति प्रार्थना करके निजलोक गये, तब चन्द्रभानु महराज ने ब्राह्मणों की–ज्ञाति बन्धुओं को–इष्ट मित्रों को प्रेम पूर्वक भोजन करवाया, ब्राह्मणों को गायें सुवर्ण पृथिवी आदि दान दिया, ज्ञातिजनों को सत्कृत किये तथा पुरजनों को यथायोग्य सत्कार करके सन्तुष्ट किये। ५६-६०

नानावस्त्राद्यलंकारैः स्त्रियःसर्वाःसमर्चिताः ।
याचकास्तोषिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन च ६१
जग्मु. स्वं स्वं गृहं सर्वे प्रशंसन्तो नृपोत्तमम् ।
ययुर्देवाः दिवं प्रीता अनुभूय महोत्सवम् ॥ ६२ ।

नाना भांति के वस्त्र और अलङ्कारों को देकर स्त्रियों की पूजा की तथा याचकों को भोजन-वस्त्र-धनादि अभीष्ट वस्तुएँ प्रदानकर सन्तुष्ट किये ॥ ६१ ॥ सभी महाराज का यशोगान करते अपने अपने घर गये, देवता गण भी-महोत्सव दर्शन जनित परम सुख लाभ प्राप्तकर प्रसन्नचित्त से अपने-अपने लोक में गये ॥ ६२ ॥

एवं समाप्य तत्कर्म्म राजा संहृष्टमानसः ।
उवास सुखितस्तत्र कन्यालालनतत्परः ॥ ६३ ॥
तथा चन्द्रप्रभा राज्ञी कन्यां कञ्जदलेक्षणाम् ।
लालयन्ती भृशं प्रीत्या निमग्ना मोदसम्प्लवे ॥ ६४

इस प्रकार विधिवत् श्रीचन्द्रकला जी के जन्म महोत्सव को समाप्त कर राजा प्रसन्नचित्त से वहीं जनकपुर धाम में अपनी प्राणोपम कन्या का लालन पालन करते वास करने लगे ॥ ६३ ॥ उसी प्रकार महाराणी श्रीचन्द्रप्रभादेवी भी कमल लोचना सुन्दरी कन्या का दुलार प्रीति पूर्वक करती हुई आनन्द सागर में मग्न हो रही हैं ॥ ६४ ॥

आलोक्य वदनं तस्याः प्रसन्नेन्दुसमप्रभम् ।
अपाययच्च स्वस्तन्यं पयोमृत रसोपमम् ॥ ६५

एवं तौ स्नेहगुणितहृदयौ पुण्यशीलिनौ ।
सुश्लाघ्ययशसौ लोके भुञ्जाते सुकृतं स्वकम् ।६६

इति श्रीलोमश संहितायां सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।

प्रसन्न चन्द्रमा के समान श्रीचन्द्रकला का मुख कमल निहार कर माता परमानन्द प्राप्त करती हैं तथा अमृत रस समान सुधास्वादु अपने स्तनों का दूध पिलाती हैं ।। ६५ ।। इस प्रकार वे दोनो राजदम्पति स्नेह रस से भरे छलकते हृदय वाले, प्रसंसनीय सुयश सम्पन्न महा भाग्यशाली अपने पुण्यों का परम मधुर फल पाकर लोक में परमानन्द प्राप्त हैं ।। ६६ ।।

इति श्रीअवध किशोर दास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' प्रणीतायां सन्तप्रिय व्याख्या समन्वितायां श्रीलोमश-संहितायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१६।।

॥ रसनायकः श्रीराघवेन्द्रो विजयते ॥

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीलोमश-संहिता

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशिवउवाच—

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि चरितं परमाद्भुतम् ।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां न तृप्ति रूपजायते ॥१॥
मिथ्याकर्कशतर्षाभिः क्लिश्यतां नष्टचेतसाम् ।
संसारे भ्रमतां घोरे नानायोनिविगाहिनाम् ॥२॥
अयं हि परमो लाभो यच्चरित्ररसायनम् ।
पिबेत्कर्णपुटै मर्त्यो जन्मबन्धभयापहम् ॥३॥

श्रीशंकरजी बोले—हे देवि ! मैं अब और भी—अद्भुत चरित्र श्रवण कराता हूँ जिसको सुनकर रसज्ञों को तृप्ति होती ही नहीं है ॥ १ ॥ मिथ्या वादविवाद तृष्णा में भटकते हुए-नाना योनियों में ऊबते डूबते-दुखित जीवों को संसार में यही परम लाभ है कि यह सकल दुःख दोष निवारक रसायन-

भूत चरित्र जब प्राप्त हो तब जन्म मरण का बन्धन मिटाने वाला यह अमृत कर्णपुटों में भरकर प्रेम पूर्वक पान करे॥२-३

एकदा भवने रम्ये नानारत्नविनिर्मिते ।
आसीना काञ्चने पीठे सुनयना पतिदेवता ॥४॥
अन्तःपुरचरीभिश्च नारीभिः कनकप्रभा ।
देवरूपाभिराविष्टा शुशुभे भूरिसम्पदा ॥ ५ ॥

एक वार नाना रत्न जटित परम रमणीय कञ्चन पीठ पर पतिप्राणा देवी सुनयना विराजमान रही ॥ ४ ॥ और अन्तःपुर की परिचारिका तथा देवता के समान सुन्दर नारियों से घिरी हुई कनक के समान कान्ति वाली महा सम्पति से भरपूर परम शोभा दे रही थी ॥ ५ ॥

रत्नदण्डविशालेन मुक्तादामविलम्बिना ।
छत्रेण च कृतच्छाया रेजे राजगुणान्विता ॥६॥
चामरैर्हंससङ्काशैर्मनोहरतरैः शुभैः ।
वीज्यमाना महार्हाभिः सखीभिः स्वाभिरादृता॥७॥

मणिमुक्ताओं की मालायें जिसमें लटक रही हैं और विशाल रत्न दण्ड से सुशोभित छत्र की छाया में सिंहासन

पर महाराज विभूति विभूषित राजमहीषी परम शोभा देती थी ॥ ६ ॥ हंस की पांख के समान स्वच्छ धवल अति मनो-हर महामूल्य चँवरों से श्रेष्ठ सखियों द्वारा वीज्यमान महा-राणी आदर पूर्वक बैठी थी ॥ ७ ॥

ताम्बूलपाणयस्तस्थुः काश्चिन्मुकुरपाणयः ।
अन्याः सुगन्धहस्ताश्च माल्यहस्तास्तथापरा ।८।
एवं राजोपचारैः सा सेव्यमाना शुचिस्मिता ।
कन्यां स्वङ्के समादाय पश्यन्ती तन्मुखाम्बुजम् ।६

कोई सखी हाथ में ताम्बूल पत्र-कोई दर्पण-कोई पुष्प-सार (इत्र) लेकर-कोई पुष्पमालायें लेकर कोई अन्य नाना-विध राजप्रिय उपकरण लेकर चारों ओर उपस्थित हैं। इस प्रकार सखी-सहेली परिचारिकाओं से आदृत सुनयना अम्बा अपनी कन्या को गोद में लेकर स्नेहाधिक्य के कारण पुत्री का मुखकमल बार-बार प्रेम से विलोकती हुई विराजमान ॥ ८-६ ॥

लालयन्ती सुतां प्रेम्णा प्रमोद मुदितानना ।
ब्रह्मानन्द निमग्नेव लेभे हर्षमनुत्तमम् ॥ १० ॥

सुनयना देवी प्रेम से अपनी कन्या का दुलार करती हुई ब्रह्मानन्द महोदधि में निमग्न हो गई हो ऐसा विलक्षण आनन्द अनुभव करने लगी ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे कन्यामुखं चन्द्रसमप्रभम्।
अकस्मादभवन्म्लानं जलात्कंजमिवोद्धृतम्।११
अङ्गेष्वपि च वैवर्ण्यमरतिर्वबृधे क्रमात्।
रुरोद च भृशं दुःखाच्चालनं कर पादयोः ॥१२।

उसी समय अकस्मात् चन्द्रमा के समान मुख की रम्य कान्ति एकाएक मलिन हो गई जैसे जल से निकाला हुआ कमल मुर्झाने लगा हो वैसी आकृति हो गई, अंगों में भी फीकापन-अरुचि किसी भी वस्तु को पाकर प्रसन्न न होना आदि क्रमशः विकार बढ़ने लगे और कन्या हाथ पांव पटक कर रुदन करने लगी ॥ ११-१२ ॥

चकार कुपितेवासौ स्खलन्ती मातुरङ्कतः।
सुतायास्तां दशां दृष्ट्वा राज्ञी शङ्कान्वितात्मना १३
आलिङ्ग्य हृदये सम्यक् तर्कयन्ती च कारणम्।
मुखे दत्त्वा स्तनं प्रीत्या चुचुम्ब च तदाननम्।१४

जैसे कोई क्रुद्ध हो जाय उस प्रकार मां की गोद त्याग कर कन्या नीचे उत्तर पड़ी, अपनी प्राण प्रिय पुत्री की ऐसी दशा देखकर महारानी सुनयना के हृदय में अनिष्टकी शङ्का हो गई। प्रेम पूर्वक भली भांति हृदय में लगाकर इस दुःखके कारण का विचार करने लगी, मुखमें अपनां पयोधर लगा कर वार-वार मुँह चुमकर पुत्री को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगी ॥ १३-१४ ॥

तदन्तः पुरचारिण्यः कुमार्यः सुखहेतवे ।
पुरतः स्थापयाञ्चक्रुर्नानाकीऽनकं परम् ॥ १५ ॥
त्रोटिकां वादयन्त्यश्च काश्चित्पाणितलान्यथ ।
गायन्त्यः पुरतःकाश्चिद्दर्शयन्त्यश्च कौतुकान्॥१६

उस समय अन्तःपुर की परिचारिकायें राजकुमारी को सुख देने के लिये अनेकों प्रकार के खिलौने आदि सामने ला-लाकर रखने लगी ॥१॥ कोई चुटकी बजाकर कोई ताली बजाकर-कोई गा-गाकर तो कोई अनेकों कौतुक दिखा दिखा कर उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी॥१६॥

एवं यत्नशतेनापि लाल्यमानाऽथ जानकी ।
रुरोदातीवदुःखेन विह्वला शोककर्षिता ॥ १७ ॥

इस प्रकार सैंकड़ों यत्न करने पर भी श्रीजानकी जी प्रसन्न न हुई, बार-बार दुलार करने पर भी शोक पीडित विह्वल होकर अत्यन्त रुदन करने लगी ॥ १७॥

राज्ञी तु भयमापन्ना सुतां दृष्ट्वातिदुःखिताम् ।
दासीं सम्प्रेषयामास शतानन्दस्य सन्निधौ ।१८।
आजगाम मुनिःश्रुत्वा राजकन्यां सुदुःखिताम् ।

महाराणी सुनयना जी ने अपनी पुत्री के दुःख से भयभीत होकर महर्षि शतानन्दजी को बुलाने के लिये उनके पास अपनी दासी को भेजी । राज कन्या का दुःख सुनकर मुनि तुरन्त महल में आये ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा समागतं विप्रं नत्वा तच्चरणाम्बुजे ।
उवाचातीव सन्तप्ता कन्यादुःखैरचिन्तितैः॥ १६।

शतानन्द मुनिको आए हुए देखकर उनके चरण कमलों में प्रणाम कर अचिन्तनीय कन्या के दुःखों से सन्तप्त महाराणी मुनि से विनय पूर्वक बोली ॥१९॥

श्रीसुनयना-उवाच

भगवन्भवतामाशीर्वादात्पुण्यातिरेकतः ।
चिराभिलषिता लब्धा कन्यासर्वसुलक्षणा ॥२०।

कस्याश्चिद्दृष्टिदोषेणाथवा बालग्रहेण च।
भूतप्रेतपिशाचैर्वा गृहीता व्याधिबाधिता ॥ २१।

हे भगवन् ! आपके अशीर्वाद से तथा महान् पुण्योदय के प्रताप से दीर्घकालीन शुभ अभिलाषा पूर्ण हुई तब यह सर्व सुलक्षण कन्या प्राप्त हुई। परन्तु न जाने किसी के दृष्ठि दोष से अथवा बाल ग्रह के प्रभाव से अथवा भूत प्रेत-पिशाचों से गृहति हो गई किंवा गृह बाधा से पीड़िता है न जाने आज क्यों इतना रुदनकर रही है कुछ पता नहीं लगता ॥२०-२१

क्षणं न लभते शान्तिं रुदंती कम्पती भृशम् ।
न करोति पयःपानं स्वास्थ्यं न भजते क्वचित् ।२२
सुखितां कुरु विप्रेन्द्र यन्त्रैर्मन्त्रैश्च तन्त्रयः ।
यथा न पुनरेवं स्यात्तथा कर्तुमिहार्हसि । २३ ।

हे भगवन् ! क्षण मात्र भी यह शान्ति लाभ नहीं करती है, न दूध पीती है और न सुख पाती है, बार-बार रोती है और कांपती है ॥२२॥ हे विप्रेन्द्र ! आप यन्त्र–मन्त्र या किसी भी उपाय से जिस प्रकार हो इसको सुखी बनाइये और फिर कभी दुवारा ऐसा दुःख न देखना पड़े ऐसा उपाय कर दीजिये ॥२३॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा शतानन्दो महामुनिः ।
आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणानायम्य वाग्यतः ।२४
कुशमुष्टिमुपादाय जपन्मन्त्राश्च नैगमान् ।
भूतघ्नीं चाकरोद्रक्षां दृष्टिदोषापवारिणीम् ।२५।
भस्मनौषधिभिश्चैव जलैर्मन्त्रोपसंस्कृतैः ।
अभ्यषिञ्चत्प्रयत्नेन तपःसिद्धिं प्रदर्शयन् ॥२६।
एतैरन्यैश्च बहुभि र्यत्नैः शास्त्रप्रदर्शितैः ।
रक्ष्यमाणा न दुःखान्तं मैथिलीचाधिगच्छति।२७

सुनयना अम्बा का वचन सुन कर महामुनि शतानन्द आचमन-प्राणायामादि करके मौन हो गये, कुशाकी मूंठी भर कर वैदिक मन्त्रों का जप करते हुए कन्या को झाड़ने लगे, दृष्टि बाधाको दूर करने वाली तथा भूत बाधाको नाश करने वाली रक्षा को किये और भस्म-औषधि से रक्षा किये मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से सींचते हैं अपनी तप सिद्धि को दिखाते हुए अनेकों उपाय करते हैं, और भी बहुत यत्नों से तथा शास्त्र प्रदर्शित प्रयोगों से रक्षा करते हैं परन्तु मिथिला-राजनन्दिनी को किञ्चित् मात्र भी लाभ न हुआ, दुःख ज्यों का त्यों बना ही रहा ॥ २४-२५-२६-२७॥

तस्मिन्नेवाथ समये कन्यांश्रुत्वा सुदुःखिनाम्।
आजगाम नृपस्तत्र याज्ञवल्क्येन संयुतः ॥२८॥

उसी समय कन्या को अत्यन्त दुःखित सुनकर महाराजा मिथिलेश महर्षि याज्ञवल्क्य को साथ लेकर महल में पधारे ॥२८॥

याज्ञवल्क्यः क्षणं ध्यात्वा प्रोवाच मिथिलेश्वरम्।
त्याग चिन्तां महाभाग न चेयं यद्विशङ्कसे ॥२९॥
दृष्टिदोषो न व्याधिर्वा नान्यदुःखस्यकारणम्।
चन्द्रभानुसुतास्नेहाद्दुःखितेयं तवात्मजा ॥३०॥

याज्ञवल्क्य मुनि थोड़ावार ध्यान कर महाराज मिथिलेश्वरजू से बोले-हे राजन् ! आप जो जो शङ्का करते हैं उनमें से कोई दोष इनमें नहीं है न दृष्टि दोष है, न भूत बाधा है न कोई ग्रह पीडा है यह आपकी कन्या केवल चन्द्रभानु कुमारी के स्नेहसे इतनी दुखित हो रही है, दूसरा कोई कारण नहीं है, आप चिन्ता का परि त्याग कर दीजिये॥२९-३०॥

यथेयं ते सुता राजन् तथा सेन्दुप्रभा सुता।
रुदंती भृशदुःखेन पतिता धरणीतले ॥ ३१ ॥

तामानय महावाहो यत्नान्नरवरात्मजाम् ।
द्वयोस्सम्मेलनेशान्तिर्भविष्यति न संशयः ॥३२॥

जैसे आपकी यह कन्या चन्द्रप्रभाकुमारी के लिये व्याकुल है वैसे ही चन्द्रप्रभाकुमारी आपकी कन्या के लिये व्याकुल है अत्यन्त दुःखित होकर धरणीं में लोट रही है ॥ ३१ ॥ हे महावाहो ! जाइये, प्रयत्न करके राजकुमारी को आदर पूर्वक ले आइये, इन दोनों के मिलने पर अपने आप दोनों के दुःख अवश्य शान्ति हो जायगी ॥ ३२ ॥

एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे काचिद्दासी समागता ।
शतानन्दं समानेतुं प्रेषिता चन्द्रभानुना ॥३३॥

इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य बात चीत कर ही रहे थे उसी समय श्रीचन्द्रभानु महाराज की भेजी एक दासी श्रीशतानन्द मुनि को लेने के लिये वहां आई और बोली॥ ३३॥

दास्युवाच–

चन्द्रप्रभासुता ब्रह्मन् दृष्टिदोषेण पीडिता ।
पयः पानं न कुरुते रोदमाना निरन्तरम् ॥३४॥

हे ब्रह्मन् ! श्रीचन्द्रभानु महाराज की कुमारी को किसी की नजर लग गई है इसलिये न तो दूध पीती है और न चुप रहती है निरन्तर रोया ही करती है, उसका दुःख मिटाने का कोई उपाय करने के लिये आपको बुलाहट हो रही है कृपा करके पधारिये ॥ ३४ ॥

इति तस्याः वचः श्रुत्वा विदेहो यमिनां वरः ।
चन्द्रभानोर्वचः स्मृत्वा जहर्ष प्रयतात्मवान् ॥३५

इस प्रकार दासी का वचन सुनकर योगिश्वरों में परम श्रेष्ठ विदेह महाराज पुत्री के जन्म के अवसर पर कहे हुए चन्द्रभानु महाराज के वचनों का स्मरण कर परम प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥

शिविकां प्रेषयामास छत्रव्यजनसंयुताम् ।
शतानन्देन सहितां तस्या आनयने द्रुतम् ॥३६।
शतानन्दस्तु नृपतिं चन्द्रभानुमबोधयत् ।
मैथिली विरहाक्रान्तहृदया प्रीति योगतः ॥३७।
दुःखितेयं सुता राजन् वैदेही चापि दुःखिता ।
द्वयोस्समागमे सर्वं दुःखमद्यैव नश्यति ॥ ३८ ॥

छत्र चँवरादि से सुसज्जित पालकी महाराज विदेह ने चन्द्रप्रभाकुमारी को बुलाने के लिये भेजी, साथ में शतानन्द जी भी तुरन्त गये, शतानन्दजी ने जाकर महाराज चन्द्रभानु को समझाया, हे राजन् आपकी यह कन्या श्रीवैदेही जू को मिलने के लिये व्याकुल है और श्रीमैथिली जू भी इसी प्रकार आपकी कन्या के लिये व्याकुल हैं। दोनों का प्रेम मिलन होते ही दोनों का दुःख आज ही नष्ट हो जायगा। ३६-३७-३८

इति प्रबोधयित्वा स विद्वान् राजपुरोहितः।
वियोग जनितं दुःखं तयो र्निर्वृतिहेतवे। ३९॥
कन्यया सहितां राज्ञीं तदाचन्द्रप्रभाभिधाम्।
कन्यामादाय चागच्छद्विप्रो जनक मन्दिरे॥४०॥

विद्वान् राजपुरोहित विप्रवर शतानन्द मुनि महाराज चन्द्रभानु को समझाकर दोनों कन्याओं का वियोगजन्य संताप निवारण करने के लिये चन्द्रप्रभा महारानी के सहित राजकन्या को लेकर जनक मंदिर में आये ॥ ३९—४० ॥

जानकी तां तदा दृष्टवा साच संवीक्ष्य मैथिलीम्
उभे कन्ये प्रमुदिते हर्षयन्त्यौ निजाङ्गनान्॥४१॥

तयोः स्नेहगतिं दृष्ट्वा सर्वा हर्षसमन्विताः ।
राजापि मुनिभिः सार्द्धमगच्छन्नृत्वराजिरम् ॥४२

श्रीकिशोरी जी ने जब श्रीचन्द्रकलाजी को देखा और श्रीचन्द्रकलाजी ने जब श्रीकिशोरीजी को देखा तो परस्पर दोनों राजकन्यायें परम प्रसन्न होकर स्वजनों के सुख का विस्तार करने लगी। उन दोनों की आपस में स्नेह गति देखकर सभी को परम हर्ष हुआ और राजर्षि विदेह महाराज भी मुनियों के साथ प्रसन्न होकर राज सभा में जा विराजे ॥ ४१-४२ ॥

महिषी भूमिपालस्य सुनयना देवपूजिता ।
तथाचन्द्र प्रभाराज्ञी गुणज्ञा गुणमण्डिता ॥४३।
स्वां स्वां सुतां समादाय रेजतू राजमन्दिरे ।
मन्यमाने महाभाग्यं सर्वलोकेषु दुर्लभम् ॥४४॥

देव पूजिता-महीपाल राजराणी-सर्वगुण मण्डिता गुण ग्राही देवी सुनयना तथा चन्द्रप्रभादेवी अपनी-अपनी कन्याओं को गोद में ले-लेकर राजमहल में आनन्दोल्लास करती है, अपना अहोभाग्य मानती हैं और सर्वलोक दुर्लभ दिव्य सुखका उपभोग करती हैं ॥४३-४४॥

यावच्चन्द्रकलां प्रीत्या सुनयना चकमे शिवे ।
मातुरङ्कात्समादातुं तावत्सीता यशस्विनी ।४५।
समुत्पत्य हसन्ती च तस्याः क्रोडं समाविशत् ।
श्लिष्टा च चन्द्रकलया तस्थौ हर्षसमन्विता ।४६

जब तक सुनयना अम्बा चन्द्रकला को महाराणी चन्द्रप्रभा के क्रोड़ से अपनी गोद में लेना चाहती हैं तब तक यशवर्धिनी सीता कुमारी अपनी मां की गोद से हँसती किलकती चन्द्रप्रभाकी गोदमें जा कर चन्द्रकलाजी को आलिंगन कर लेती हैं चन्द्रप्रभाजी दोनों कुमारिकाओं को गाढ आलिङ्गन कर प्रसन्न होती हैं, दोनों कन्यायें उनकी गोद में प्रसन्न हो कर विराजमान हो रही हैं ॥ ४५-४६ ॥

चन्द्रप्रभा तु वात्सल्याद्गाढमालिङ्ग्य सत्वरम् ।
चुचुम्ब मुखमीक्षयन्ती प्रहर्षं परमं ययौ ॥ ४७ ।
सीता चन्द्रकला चोभे तस्याः क्रोडे विरेजतुः ।
परस्परेण मिलते हसन्त्यौ च मुहुर्मुहुः ॥४८॥

श्रीचन्द्र प्रभाजी तुरन्त स्नेहाधिक्य वश गाढालिङ्गन कर मुख निहारती हैं, चुम्बन करती हैं और परम हर्ष पाती

है। सीता-और चन्द्रकला दोनों कन्यायें उनकी गोदी में क्रीडा करती हैं, परस्पर मिलती हैं और बार-बार रह रहकर हँसती हैं ॥४७-४८॥

मुखं मुखेन संयोज्य शोभनै र्बालचेष्टितैः।
सहस्तन्यस्य पानेन मात्रोः प्रददतुर्मुदम्॥४६।
एवं तयोः परांप्रीतिं दृष्टवा सर्वा सखीजनाः।
अन्तः पुरनिवासिन्यो लेभिरे परमां मुदम् ॥५०

सुन्दर बाल लीलाओं को दिखती हुई दोनो बालिकाए मुख में मुख मिलाकर एक दूसरे की हँसी बढ़ाती है एक साथ पयोधर का पान करने से दोनों माताओं को आनन्द प्रदान करती है, इस प्रकार सखीजन तथा पुरजन निवासी दोनों-कन्याओं की परस्पर प्रीति भाव को देखकर परमानन्द प्राप्त करते हैं, ॥४९-५०॥

तदाप्रभृति चान्योन्यं राजपत्न्यौ प्रयत्नतः।
संयोगाय प्रयततुरुभयो राजकन्ययोः॥ ५१ ॥
नित्यकृत्यं विधायाथ राज्ञी चन्द्रप्रभास्वयम्।
आदाय स्वसुतामङ्के चायाति नृपमन्दिरे ॥५२।

कदाचिन्मैथिलीं नीत्वा सखीभिः परिवारिता ।
चन्द्रभानोर्गृहं शुभ्रमायाति मिथिलेश्वरी ॥ ५३ ॥
एवमन्योन्य संयोगान्मातृभिः परितोषणात् ।
राजाधिराजतनये ववृधाते मुदा क्रमात् ॥५४॥

उस दिन से दोनों राजपटराणी परस्पर प्रेमपूर्वक दोनों कन्याओं को प्रसन्न करने के लिये नित्य नियम कर्म से निवृत्त होंनेपर एक दूसरे के वहां अपनी- अपनी कन्या को लेकर सम्मिलित क्रीड़ा सुख प्राप्त करने के लिये जाती आती है। कभी कभी श्रीचन्द्रप्रभा जी अपनी कन्या को गोद में लेकर स्वयं राजमन्दिर में पधारती हैं। कभी-श्रीसुनयनाजी अपनी कन्या को लेकर सखीजनों के साथ श्रीचन्द्रभानु महाराज के मन्दिर में पधारती हैं। इस प्रकार महाराणी मिथिलेश्वरी महाराणी चन्द्रप्रभा का परितोषण करती हुई परस्पर एक दूसरी को प्रसन्न करती दोनों राज-कन्यायें क्रमशः दिन प्रति बढ रहीं है ॥५३-५४॥

तथैवान्याः कुमार्य्यश्च चारुशीलादयः शुभाः ।
मिथिलात्मजया साकं क्रीडन्ति नृपवेश्मनि ।५५

क्रीडोपकरणान्यत्र नानारत्नमयानि च।
गृहीत्वा पाणिभिस्सर्वाश्चिक्रीडुर्जहसुर्जगुः।५६।

इसी प्रकार अन्य निमिवंश राजकुमारिकायें श्रीचारुशीलादिक बालायें श्रीमैथिलीजू के साथ क्रीडा सुख प्राप्त करने के लिये आती हैं और खेलती हैं, नानारत्नमय खेल खेलने के खिलौने आदि वस्तुएँ अपने-अपने हाथ में लेकर सभी-खेलती हैं-हँसती और परमानन्द प्राप्त करती हैं ॥ ५५-५६ ॥

कन्दुकादिविचित्रैश्च पतङ्गभ्रमरादिभिः।
क्रीडन्त्यो राजकन्यास्ताश्चेरुश्च राजवेश्मनि ।५७
एवं विहारैः कौमारैः सर्वास्ता राजकन्यकाः।
ददुश्च परमानन्दं मातॄणां सुकृतार्जितम् ॥५८।

भांति-भांति के चित्र बिचित्र गेंद पतङ्ग-भ्रमर आदि खिलोनों से वे राजकन्यायें राजमंदिर में खेलती घूमती (कूदती) हैं इस प्रकार कुमार अवस्था का क्रीडा विहार करके उन राजकुमारियों ने अपनी माताओं को उनके पुण्य फल स्वरूप परमानन्दका प्रदान किया ॥५७-५८॥

इति ते कथिता देवि कथा कल्मषनाशिनी।
पुण्या चन्द्रकलायाश्च श्रृक्तां सर्वकामदा॥ ५९
श्रोतव्येयं प्रयत्नेन सततं भक्ति वेतृभिः।
सीताराम पदाम्भोज दृढ प्रीत्याभिकांक्षिभिः॥ ६०

इति श्रीलोमश संहितायामष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

हे देवि ! इस प्रकार पाप विनाशिनी पवित्र कथा सुनने वाले का मनोरथ पूर्ण करनेवाली श्रीचन्द्रकलाजू की लीला मैंने वर्णन कर सुनाई। जिनको भक्तितत्त्व जानने की इच्छा हो तथा श्रीसीताराम जी के चरण कमलों में दृढ प्रीति की आकांक्षा हो उनको यह कथा प्रयत्न कर श्रवण करनी चाहिये॥ ५९-६०॥

इति प्रेमनिधि' प्रणीता सन्तप्रिया व्याख्या समन्विता यां
श्रीलोमश--संहितायां
अष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

❀ श्रीमदैश्वर्य्यै श्रीमत्यै चन्द्रकलायै नमः ❀

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीलोमश-संहिता

एकोनविंशतितमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच—

नमस्ते देवदेवेश सर्वलोकोपकारक।
श्राविता मे कथा दिव्या सुखदा शुद्धचेतसाम्।।१।।
असदालापश्रवणाच्छ्रवणं मलिनं भृशम्।
विशुद्धयत्यचिरेणैव यस्याः श्रवणमात्रतः।।२।।

हे देव देव! शुद्धान्तः करणवालों को परम सुख देने वाली दिव्य कथा आपने श्रवण कराई। हे सर्व लोकोप कारक! मैं आपके चरणों में नमस्कार करती हूँ. झूठी जगत् की अपावन बातों का श्रवण कर जिनके मन मलिन हो गया है, उन लोगों का हृदय यह कथा सुनते ही तुरन्त विशुद्ध हो जाता है ।। १-२ ।।

प्रसन्नं मे मनः स्वामिन् कथा कल्मषनाशिनी
श्रुतामयाद्य ते वक्त्रचन्द्रादेषा विनिर्गता ।।३।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि व्रतमस्या ह्यनुत्तमम् ।
पूजायाश्च विधिं सम्यक् कथयस्व कृपानिधे ।४।

हे स्वामिन् ! आपके मुख चन्द्र से निकाली हुई सकल पाप विनाशिनी यह पुण्य कथा आज मैंने प्रेम पूर्वक सुनी, हे नाथ ! अब आपके मुखसे इनके व्रतोत्सव का विधान तथा पूजा विधि का प्रकार विस्तार पूर्वक हे कृपानिधि ! वर्णन कर सुनाइये ।। ३-४ ।।

श्रीब्रह्मा-उवाच

श्रुत्वा तदीय वचनं शिवः सर्वार्थसाधनः ।
हर्षेण महताविष्टः पुनः प्रोवाच तां शिवाम् ।।५।।

श्रीब्रह्मा जी बोले हे लोमश ! पार्वती के ऐसे प्रिय वचन सुनकर समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाले शङ्करजी महान् आनन्द से प्रसन्न चित्त होकर श्रीगिरिजा देवी से बोले।।५।।

श्रीशिव-उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि व्रतमस्या महोत्तमम् ।
यत्कृत्वा मानवाः सर्वे लभन्ते वाञ्छितं फलम्।६।

हे देवी ! मैं श्रीचन्द्रकलाजू के व्रत का महान् श्रेष्ठ विधान वर्णन कर सुनाता हूँ। जिसके करने से मनुष्य सभी प्रकार का वाञ्छित मनोरथ प्राप्त करते हैं ॥६॥

वैशाखस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां वरानने ।
पवित्रं भोजनं कुर्यान्मध्याह्ने शुद्धमानसः ॥७॥
वर्जयेदसदालापं नाम सङ्कीर्तनादिकम् ।
कुर्वन्नतन्द्रितः शुद्धः प्रदोषे स्नानमाचरेत् ॥ ८ ॥

हे सुन्दर मुखी ! वैशाख के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को मध्यान्ह काल में शुद्ध अन्तःकरण वाला भक्त पवित्र भोजन करे, अपावन वार्ताका त्याग करे नाम सङ्कीर्तनादिक करता रहे, आलस्य का परित्याग कर सायङ्काल में पुनः स्नान करे ॥ ७-८ ॥

रात्रौ पवित्र शय्यायां शयीत नियतेन्द्रियः ।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय व्रतं सङ्कल्पयेत्ततः ॥९॥

रात्रिमें पवित्र कुश-कम्बलादि बिछौने पर शयन करे, जितेन्द्रिय रहे, प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर मनमें व्रत का शुभ सङ्कल्प करे ॥९॥

नमश्चन्द्रकले देवि तव जन्मदिने शुभे।
उपवासं करिष्यामि सर्व भोग विवर्जितः ॥१०॥
मन्त्रेनानेन सङ्कल्पं कृत्वा नियतमानसः।
ध्यायन्तस्याःशुभां मूर्तिं प्रातः कृत्यं समापयेत्॥११

हे चन्द्रकले देवि! आपके जन्म दिवस में मैं आज समस्त भोगों का परित्याग करके उपवास करूँगा" इस मंत्र को पढ़कर दृढ़ मनसे सङ्कल्प करे और श्रीचन्द्रकलाजी के स्वरूप का ध्यान करता हुआ प्रातःकालीन कर्तव्य समाप्त करे ॥१०-११॥

शौचं स्नानादिकं कर्म सन्ध्योपास्यादिकं च यत्।
कृत्वा विशुद्ध मनसा ततः पूजां समाचरेत् ॥१२॥
श्रद्धया परया सर्वान् सम्भारान् सञ्चयेत्सुधीः ॥
जलेन गोमयेनाऽथ विशोधित वसुन्धराः॥१३॥

शौच-स्नान-सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म विशुद्ध मनसे करके तब पूजा प्रारम्भ करे, परम श्रद्धा पूर्वक सभी पूजन सामग्री को पवित्रता पूर्वक शुद्ध संशोधन करके संग्रह करे, जल और मृत्तिका गोबर मिला कर पूजा भूमि को लीप पोत

कर विशुद्ध बनावे। पक्की जमीन हो तो धोकर शुद्ध कर ले ॥१२-१३॥

मण्डपं रचयेत्तत्र चतुर्द्वारं मनोहरम्।
शोभनाभिः पताकाभिस्तोरणादिश्चभूषितम्।१४
रोपयेत्कदलीस्तम्भान् फलपुष्प विभूषितान्।
चतुष्कोणेषु कलशान्स्थापयेत्पट्टिकायुतान्।१५।

उस सुशोभित वसुन्धरा पर चार दरवाजे का सुन्दर मण्डप बनावे, तथा उसको मनोहर ध्वजा-पताका-तोरण वन्दनवार आदिसे सुशोभित करे। कदली स्तम्भ फल-फूल विभूषित चारों ओर रोपे। पट्टिका-पल्लव-चित्र-दीप आदि से अलंकृत चार घडा चारों दिशा में स्थापित करे ॥१४-१५

जलपूर्णान्सदीपांस्तान् कृत्वाद्रव्यं विनिक्षिपेत्।
तन्मध्ये स्थापयेत्पीठं पीतस्तरणसंवृतम् ॥१६॥
श्रीचूर्णेन विलिख्याथ पद्ममष्टदलं बहिः।
मध्ये षट् कोणमालिख्य तत्र वीजान्तरे रमाम्॥१७

जल से भरे हुए द्रव्य छोड़े हुए सुन्दर घट चावल के ऊपर रखे, उस मण्डप के मध्यभागमें पीला बिछौना बिछा

कर एक चौखुटी चौकी रखे, उसके मध्यभागमें श्रीचूर्ण से अष्ट दल पद्मबनावे, मध्यगोल में षट्कोण यन्त्र लिखे, उसके मध्यभागमें श्रीबीजअङ्कित करे ॥१६-१७॥

अधश्चन्द्रकलामन्त्रं लिखेत्तस्या विचक्षणः।
ज्ञानेशानादि मन्त्राश्च कोणेषु भावयेत्क्रमात् ।१८
ततश्चाष्टदले भक्त्या विमलादींश्च चिन्तयेत्।
एवं संभृत सम्भारः पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ १९ ॥

उसके नीचे श्रीचन्द्रकलाजू का मन्त्र लिखे, तत्पश्चात् विलक्षण विद्वान् ज्ञानाजू-ईशानाजू आदि शक्तियों की * षट् कोण में भावना करता हुआ क्रमशः स्थापना करे॥१८॥ तब*अष्टदलपद्म में भक्ति पूर्वक विमलादीक अष्ट शक्तियों का आवाहन कर विधि पूर्वक लाये हुए पूजन द्रव्य से श्रद्धा पूर्वक पूजन करे॥ १८-१९ ॥

स्तुत्वा नत्वा प्रयत्नेन कुर्य्यादेवं महोत्सवम् ।
रात्रौ जागरणं कुर्य्यान्नामसंकीर्तनादिभिः ॥२०

इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् स्तुति प्रार्थना करके सुन्दर महोत्सव मनावे, रातमें जागरण करता हुआ नाम सङ्कीर्तनादिक करे ॥२०॥

गानवाद्यादि नृत्यैश्च धीरः स्वजन संवृतः।
एवं समाप्य नियतः व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् ॥२१॥
वैष्णवान्भोजयेत्पश्चान्मधुरान्नेन शक्तितः।
ततश्चपारणं कृत्वा व्रतं तस्यैसमर्पयेत् ॥२२॥

धीर पुरुष गान-वाद्य-नृत्य उत्सव मङ्गलादिक स्वजनों को साथ मिलकर श्रद्धा समेत करे, इस प्रकार समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाला श्रीचन्द्रकला जयन्ती व्रत विधि पूर्वक समाप्त करे ॥२१॥ उद्यापन में वैष्णवों को बुलाकर यथाशक्ति मधुर पदार्थ भोग लगाकर प्रसन्नता पूर्वक भोजन करावे, तत्पश्चात् पारण करके व्रत का फल श्रीसर्वेश्वरीजू को समर्पण कर दे ॥२२॥

कुर्यादेवं विधानेन व्रतं सर्व फलप्रदम्।
न भुञ्जीत प्रयत्नेन तस्या जन्मदिने शिवे।२३।
य इच्छेदात्मनः क्षेमं भक्तिं चाथरसात्मिकाम्।
कर्तव्यं नियमेनैतद् व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥२४॥

हे पार्वति ! इस प्रकार सर्व सिद्ध फल प्रद यह व्रत श्रीचन्द्रकलाजी के जन्मदिवसको प्रयत्न पूर्वक अवश्य करे,

अन्न भोजन भूलकर भी-उस दिन न करे। जो आत्मा का कल्याण चाहता हो तथा भक्तिरसात्मिका रति जो प्राप्त करना चाहता हो उसको उचित है कि यह सर्व पाप विनाशक व्रत नियम पूर्वक किया करे ॥२३-२४॥

अन्यथा पापमाप्नोति न चेत् कुर्य्याद् व्रतं शुभम्
तस्मादेतद् व्रतं देवि कर्तव्यं भावुकैर्जनैः ॥२५॥
व्रतेनानेन संप्रीतौ सीतारामौ परात्परौ।
सेवाधिकारं यच्छेतां ब्रह्मादीनां च दुर्लभम् ॥२६

इति श्रीलोमश-संहिताया मेकोन विंशतितमोऽध्यायः ॥१॥

जो इस शुभ व्रत का अनादर कर अन्यथा आचरण करता है वह अपराधी बनता है इसलिये हेदेवि! भावुकजनों को यह व्रत अवश्य करना चाहिये। इस व्रत से प्रसन्न होकर परात्पर तर परब्रह्म प्रभु श्रीसीतारामजी ब्रह्मादि देवताओंको भी अति दुर्लभ निज सेवा का अधिकार कृपा कर प्रदान करते हैं ॥२५-२६॥

इति श्रीअवधकिशोरदास श्रीवैष्णव प्रेमनिधि प्रणीता सन्तप्रिया व्याख्या समन्वितायां श्रीलोमश--संहितायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

❀ श्रीजानकीवल्लभो-विजयते ❀

॥ श्रीमते हनुमते नमः ॥

❀ श्रीसम्प्रदायाचार्यवर्य्या विजयन्ते ❀

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

अथ श्रीलोमश-संहिता

विंशतितमोऽध्यायः

श्रीपार्वत्युवाच-

श्रुतं प्रभो चन्द्रप्रभासुताया मलापहं जन्मतिथिव्रतञ्चयत्। अग्रे चरित्रं वद मे त्वमद्भुतं विदेहजाक्रीडनकं तया सह ॥ १ ॥

हे प्रभो! श्रीचन्द्रप्रभा कुमारी सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू का जन्म महोत्सव- जयन्ति व्रत अद्भुत चरित्रादि आपके मुखारविन्द से श्रवण कर परम आनन्द हुआ, अब कृपाकर उनका अग्रिम चरित्र श्रीविदेह नन्दिनीजू के साथ श्रीचन्द्रकलाजू की समस्त पाप निवारक दिव्य लीलाओं का वर्णन सुनाकर कृतार्थ करिये ॥१॥

श्रीशिव-उवाच—

वक्ष्याम्यहं चारुतरं रसायनं सुरासुराणा-मपि दुर्लभं भुवि। विना गुरोः पादप्रसादतः प्रिये न लभ्यते जन्म सहस्रशो यदा ॥ २ ॥

हे देवि ! परम सुन्दर श्रवण रसायन, सुर-असुरों को भी दुर्लभ श्रीचन्द्रकलाजी का पावन चरित्र मैं वर्णन करता हूँ, श्रीसद्गुरु की कृपा और चरण प्रसाद के विना हजारों जन्म वीत जायँ तो भी हे प्रिये ! यह रहस्य प्राप्त नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

यावन्न सीतालिगणेषु गण्यते तत्पाद सेवा-स्वधिकार मुख्यतः। तावन्न तद्गोप्य रहस्य संश्रयो भवेन्न वै योग जपव्रतादिभिः॥ ३ ॥

जब तक आचार्य कृपा द्वारा यह जीव श्रीकिशोरीजी की सहचरियों की गणना में नहीं गिना जाता है जबतक उन की मुख्य सेवा करने का अधिकार उसको श्रीगुरु-कृपा द्वारा प्राप्त नहीं हो जाता है तबतक कितने ही योग-जप तप-व्रतादि

क्यों न करे उनके अन्तरङ्ग गोपनीय रहस्य के रसास्वादनका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता है ॥३॥

त्वं तावदेवासि ममप्रियोत्तमा श्रीजानकी राघवयोश्च वल्लभा। वक्ष्याम्यतो गुह्यरहस्यमद्भुतं ह्यहर्निशं तद्रसिकैकजीवनम् ॥ ४ ॥

हे पार्वति ! तुम तो मेरी प्राण प्रियतमा हो तथा श्रीयुगलप्रभु श्रीसीतारामजी की भी परम प्रिय अनुचरी हो एतदर्थ रसिक सन्तजनों का जीवन धन अहर्निश अनुराग पूर्वक चिन्तवन करने योग्य यह अद्भुत गुह्य रहस्य तुमको कह सुनाता हूँ ॥४॥

श्रीचन्द्रभानोश्च कुमारिकाया विदेह राजस्य कुमारिकायाः। गुप्तं रहस्यं निगमागमात्परं पौगण्ड केलिश्च सखीभिरुत्तमाम् ॥ ५ ॥

श्रीचन्द्रभानु कुमारिका तथा श्रीविदेहराज कुमारी जी की पौगण्डलीला केलि का गुप्त रहस्य, जिसको निगमागम पुराण वेत्ता विद्वान् भी नहीं जान पाते (जो केवल कृपा

लभ्य ही है) सर्वश्रेष्ठ सखियों के साथ उनकी दिव्य लीला कथा का वर्णन सुनो ॥ ५ ॥

यदा द्वयोरेक वयः समागते समान शीलत्व कलासु कौशलम् । स्वरूप सौन्दर्य रसेष्वभिज्ञता क्रीडा तदा सा वबृधे मनोहरा ॥ ६ ॥

जब दोनों राजकुमारिकाओंको समान वय समान शील तथा समानहीकलाओं में कुशलता प्राप्त हुई, स्वरूप-सौन्दर्य और प्रेमरसास्वादन की अभिरुचि तथा अभिज्ञाता जैसे जैसे बढ़ती गई वैसे वैसे उनकी मनोहर लीला अत्यन्त हृदय हारिणी परम रसप्रदा होती ही गई ॥६॥

महाट्टालकेरत्नराजिर्विरेजे मणीनां महाभित्तिका स्वर्णरूप्यैः । महत्सौधयुक्तैर्महोच्चैः पताकैर्लसद्धौम सप्ताष्टदिग्भास्कराभैः ॥ ७ ॥

श्री श्रीजू के धाम श्रीजनकपुर में श्रीविदेह महाराज के भ्राताओं के ऊँचे-ऊँचे सूर्य के समान तेजस्वी पन्द्रह महल परम रमणीय हैं, जिनकी भीत स्वर्ण और चांदी की बनी हैं, मणिरत्न जटित विचित्र भूमि है, पताका और ध्वजाओं से

सुशोभित तथा रत्न पंक्तियों से विभूषित महान् अट्टालिकायें उन राजभवनों की शोभा को अत्यन्त अभिवृद्धि कर रही हैं ॥ ७ ॥

महत्पिञ्जरैर्भास्वरैः स्वर्णरूप्यैः कृतैश्चित्रितैश्चित्रपक्षैः खगैश्च । महद्रावरम्यैः प्रपूर्णं गृहं तद्यथा नन्दने नन्दते देवकन्या ॥ ८ ॥

बड़े-बड़े पिञ्जरों में-जो स्वर्ण और रूपाके बने हुए चमचमाते नाना भांति चित्रों से सुशोभित हैं उनमें रंग विरंगी सुन्दर पांखों वाले मनोहर पक्षी महान् रमणीय कल निनाद पूर्ण विनोद करते हैं, प्रफुल्ल चित्त से विहार करनेवाली देव कन्याओं से सुशोभित नन्दनवन जैसा सुन्दर लगता है वैसा उन पक्षियों के विलास से राज गृहोद्यान रमणीय लगता है ॥ ८ ॥

शुकैः सारसैः कोकिलैर्भृङ्गवृन्दैर्मयूरैश्चकोरैः कपोतैश्च हंसैः । प्रपूर्णो रवस्तत्र तत्र प्रशस्तः प्रमोदप्रदः पावनो भावगम्यः ॥ ९ ॥

शुक-सारस कोकिल-भ्रमर-—मयूर-चकोर कपोत और हंसादिक सुन्दर पक्षियों के कलरव से वे मन्दिर परिपूर्ण हो

रहे हैं, उनका कलरव प्रमोद प्रद-पावन एवं भावगम्य होने से परम प्रसंसनीय है ॥९॥

ताः पालयित्वा बहुपक्षिसंकुले प्रपाठयन्त्यः किल शिक्षया भृशम्। जयेच्छया स्वात्मसुखानुभूतये स्वस्वालये प्रेष्ठतमांश्च स्वात्मवत् ॥ १० ॥

उन सुन्दर-सुन्दर नाना प्रकारके पक्षि समूहसे संकुलित राजकन्यायें अपने-अपने महलों में भली भाँति शिक्षा दे-देकर पक्षियों को पढ़ाती हैं तथा परस्पर जयकी इच्छा तथा आत्म सुखानुभूति के लिये अपने प्राण के समान प्रिय उन पक्षियों का पालन करती हैं ॥१०॥

मणीन्द्रमुक्तामणि राजिरञ्जिते चिन्तात्रयै रत्नचयै र्विनिर्मिते। महत्कपाटार्गल यन्त्रेयन्त्रिते दुर्गे महोत्तुङ्गपताकयावृते ॥ ११ ॥

इन्द्रमणि-मुक्तामणि-समुदाय से रंजित चिन्तामणि हीरकादि नानारत्नों से विनिर्मित [लता पुष्प वेलियों के चित्रों से रञ्जित] विशाल किवाड तथा अर्गला [जञ्जीर तथा बाहर भीतर से खोलने के लिये विलैया] अत्यन्त ऊँचे

बिशाल ध्वजा से सुशोभित महादुर्ग (किला) में राजभवन सुशोभित हैं ॥११॥

तस्योपरिष्टात्कलशोन्नतं महत्सौवर्णचित्रैः खचितं विधात्रा । प्रकूजितैर्हंस शुकैः कपोतकै र्विरोचमानं गगनोपमोन्नतम् ॥ १२ ॥

आकाश को स्पर्श करनेवाले अति विशाल उस भवनके शिखर पर स्वर्ण रचित चित्र विचित्र रचनाओं से सुशोभित सुन्दर कलश सूर्य के समान प्रकाशित होता है, उसके चारों ओर विहारमग्न हंस शुकादिकों की मीठी बोली अतीव मनोहर लगती है ॥१२॥

मराल सिद्धैश्च मयूरजालैरलंकृतं राज-गृहं मनोहरम् । विभासितं सल्ललनानुरञ्जितं प्रलोभयन्तीभिरलं भुवस्तलम्॥ १३ ॥

मराल-मयूरादि चित्र निकाले हुए सुन्दर रत्नजालों से अलंकृत वह राजभवन प्रकाशमन्त है तथा अपनी अनिन्द्य सुन्दरता से भूमण्डल को प्रलोभित करने वाली सती लल-नाओं से परम रमणीय हो रहा है ॥१३॥

प्रकृष्ट कोष्ठाभि प्रकाशितानि प्रफुल्ल पुष्प भ्रमरैयुतानि। प्रासादमाला परिशोभितानि स्थलानि सद्राजसुता प्रभावात् ॥ १४ ॥

अत्युत्तम कोठरियों (कक्षा) से जगामग प्रकाशित फूले पुष्पों मतवाले भ्रमरों से गुञ्जारित तथा शिखरों की पंक्तियोंसे अतिशोभित वे स्थल श्रीराजकुमारीजू की प्रभा के प्रभावसे और भी अधिक रमणीय हो रहे हैं ॥१४॥

वनेचराणां सदनं मनोहरं बृतं विचित्रैर्बहुरत्न धातुभिः। युद्धाभियुद्ध प्रिय पक्षिसङ्घैः प्रासाद वातायन चत्वरैर्वृत्तम् ॥ १५ ॥ शार्दूल चातक चकोर शुकैः कपोत मायूरतित्तिरिरथाङ्ग कसारसानि। हंसैर्वकैश्चटकपुञ्ज कुलिङ्जकानि नानाविधानि शकुनोद्धतसंकुलानि ॥१६ ऋक्षा बृषाजवृक शूकर खड्गमेषा अश्वा गजा महिष युद्ध कला सुविज्ञाः। स्वीयैर्बलैर्जय पराजय तत्त्वसाराः क्रीडन्ति यत्र ललना गण शिक्षयाते ॥ १७ ॥

परस्पर युद्धलीला करनेमें प्रवीण पशु-पक्षियोंके निवास गृह भी बहुमूल्य रत्न धातुओं से निर्मित सुन्दर झरोखा अटारी शिखरादिकों से सुशोभित हैं ॥१५॥ शार्दूल-चातक चकोर-शुक-कपोत मयूर-तीतर-चक्रवाक-सारस-हंस-बक तथा छोटी-छोटी-लालमुनिया खञ्जनादि चिड़ियों के समूह ॥१६॥ युद्ध क्रीडा में रस लेने वाले रीछ-सांढ-घोड़ा-शूकर-हाथी भैंस-भेड़ा आदि पशु पक्षी राजकुमारिकाओं को प्रसन्न करने के लिये वैर विरोध रहित केवल बिनोदार्थ अपने अपने बल को जानकर जय-पराजय तत्त्व को समझकर समान बल और अवस्थावालों से उद्धत होकर लड़ते हैं राजललनायें उनको प्रेम पूर्वक युद्ध शिक्षा देती हैं ॥१७॥

इत्थं महद्रम्य विलासजं सुखं कुर्वन्तिताः स्व-स्वरुचि प्रकर्षतः । रहस्य गोष्ठीं परिकल्पितांतां करोति सा चन्द्रकला सखीगणैः॥१८।

इस प्रकार वे सब अपनी २ रुचि के प्रकर्ष से बहुत रमणीक विलाससे जायमान सुख को करती है और श्रीचन्द्रकला जी अपनी सखियों के साथ २ रहस्य गोष्ठी बनाकर अनेक लीलायें करती हैं ॥१८॥

हर्म्याणि चित्राणि मनोहराणि मुक्ता प्रवालैर्मणि निर्मितानि। प्रासाद सोपान समाश्रितानि क्रीडन्ति बालाः कलसिञ्जितैःपदैः।१९

मणि-मुक्ता प्रवाल निर्मित विचित्र मनोहर उन महलों में सुन्दर सोपान पंक्तियों से सुशोभित प्रासादों में सभी सहेलियों के साथ-साथ सुमधुर चरणों द्वारा घूम फिर कर क्रीडा करती हैं ॥१९॥

केयूर कंकण नवाङ्गद नूपुराणां भूषा समूह परिकल्पित सुन्दरीणाम्। क्रीडा रता यौवन गर्वितानां वीणा मृदङ्ग रवझर्झर तालिकानाम् ॥२०॥ सारङ्गिका कौणवि कच्छपीनां मूर्जङ्गिका बाहुलिका वृतानाम्। तालानुतालस्वर सप्तकानामपूर्व संशिक्षण शिक्षितानाम् ॥२१॥ बालावली कल्पित मंडलानां झणत्कृताराव सुपूरितानाम। नृत्यन्मयूरी पिक हंसिनीनां ध्वनिः पृथिव्यां प्रथिता बभूव ॥ २२ ॥

वाला (ललना) की पंक्तियां से निर्मित रासमडलों के मध्य में कितनी सुन्दरियां त्रिजावठ कंकण नूपुरादि भूषणोंसे सुसज्जिता क्रीडा कौतुक मे रता युवा वस्था की गर्व से गर्विता हैं, कितनी वीणा मृदंग झरझर तालादि को लिए कितनी साग्ङ्गी कौणवी, कच्छपी, मुर्ज़ंग वाहुली को लिए वजा रही हैं कितनी अनेकन राग रागिणी के ज्ञानमें संशिक्षित आचार्या यें से अपूर्व संशिक्षित हैं कितनी तालानुताल सप्त स्वर को उच्चारण कर रही हैं जिन सब के भूषण वाद्यादि के झन-त्कार से रास मंडल परिपूर्ण हो रहा है कितनी मयूरी पिकी हंसिनीओं शदश नृत्य करती हैं इस प्रकार उन ललनायेंकी पङ्क्तियां से रचित रास मंडल के उक्त वाद्यादि शब्दों से पृथिवी परि पूर्णा हो गई ॥२०-२१-२२॥

माता तयोर्भूषण वस्त्रजालैः शृङ्गारयित्वा बहुधानु लेपनैः । प्रपश्यतीन्दीवर चारुलोचना न तृप्ति मायाति मुहुर्मुहुश्च ॥ २३ ॥

माता उन दोनों श्रीजनकनन्दिनीजू तथा श्रीचन्द्रकलाजू को नाना विध तेल-फुलेल-इत्रादि लगाकर सुन्दर से सुन्दर वस्त्रभूषण पहना कर उत्तमोत्तम शृङ्गार करके उनके मनोहर

मुख को बार बार अवलोकन करती हैं परन्तु कमल नयना माँ को तृप्ति होती ही नहीं है, मन भरता ही नहीं दर्शन की लालसा बढ़ती ही जाती है ॥२३॥

निर्माय नानाविध भोजनानि स्वादूनि दिव्यानि सुखावहानि। प्रभोजयन्ती सुखसि-न्धुमग्ना सुते सभृत्या मुदिता सुनेत्रा ॥२४॥

सुस्वादु-दिव्य सुख प्रद नाना भांति मधुर भोजन बना बना कर दोनों राजकुमारियोंको भोजन कराती हैं और महा-रानी सुनयनाजी अपनी सेविको तथा सहचरियों समेत सुख सिन्धु में मग्न हो जाती है ॥२४॥

विदेह कन्यांच सुचन्द्रभानोः सुतां तथा चान्यकुल प्रसूताः। संभोजयित्वा विविधोप-चारैः संलालयन्तीन्दु प्रभा सुनेत्रा ॥ २५ ॥

श्रीविदेह कुमारीजू तथा श्रीचन्द्रभानु कुमारीजू तथा अन्य निमिकुल प्रसूता श्रीकिशोरीजू की सखियों को विविध भांति भोजन और लालन पालन दुलार करके श्रीसुनयनाजू तथा श्रीचन्द्रप्रभाजू परम प्रसन्न होती हैं ॥२५॥

यावन्त्यः कुलकन्यका नृपगृहे स्वे-स्वेगृहे भूषिता स्तावन्त्यः शुभ पेटिकाधृत करैश्चेटी गणैः संवृताः। खेलन्त्यः स्वजिरे प्रसन्न हृदयाः प्रोत्फुल्ल नेत्रानना मोदं संप्रदुदुःस्वमातृ पितृभिः साकं जनान्स्वाश्रितान् ॥ २६ ॥

अपने अपने घर में विभूषित होकर जितनी कुल कन्यकायें राजभवन में आई हैं उतनी हो उनकी दासियां अलङ्कार भूषण खिलौने आदि से भरी हुई सुन्दर पेटियां साथ लेकर सुसज्जित हैं। महाराज के सुन्दर आङ्गन में वे सभी प्रसन्न हृदय-विकसित कमल नयना हर्षित होकर खेलती हैं तथा अपनी वाल क्रीडा से माता-पिता तथा अपने आश्रितजनों को परमानन्द प्रदान करती हैं ॥ २६ ॥

श्रीचन्द्रभानोश्च गृहे समागताश्चन्द्र प्रभायाश्च गुणैक राशयः। संखेलयन्त्यो मुदिताःसमुत्सुका नृत्यन्ति गायन्ति च बालचेष्टया ॥२७

नाना प्रकार की बाललीलायें करती खेलती हुई वे बालायें श्रीचन्द्र भानु महाराज एवं श्रीचन्द्रप्रभा महारानीके

महल में आईं। गुणोंकी राशियां वे कुमारिकायें गाती-नाचती तथा प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करती हैं ॥२७॥

चन्द्रप्रभा चन्द्रकलां समुत्सुका शृंगारयामास सुवस्त्रभूषणैः। आन्दोलयन्ती सुखसिन्धु मग्ना प्रभा समूहैः परिपूरिते गृहे ॥२८।

श्रीचन्द्रप्रभाजी प्राणोपम प्रिय पुत्री श्रीचन्द्रकलाजू का बड़ी उत्कण्ठा पूर्वक शृङ्गार करती हैं तथा सुन्दर वस्त्र भूषणों से सजाकर समस्त सुख सामग्री पूर्ण प्रकाशमान् गृह में लाड लड़ाकर गोदी में बिठाकर झुलाती हुई सुख समुद्र में मग्न हो जाती हैं ॥२८॥

सा प्रेषिता स्वात्म सखीभिरन्विता सीता निवासे बहुवस्त्रभूषणैः। प्रत्यंग भूषा भरणैश्च भूषिता विरोचमाना शशिनेव सा शुभैः ॥२९।

प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें अनुकूल भूषण वस्त्रों से सुशोभितकर अपनी सखीके साथ श्रीचन्द्रकलाजी को श्रीकिशोरी जी के महल में क्रीडा करने के लिये मां चन्द्रप्रभा ने भेजी, उस समय समस्त कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभा देती थी ॥२९॥

श्रीजानक्या गृहे रम्ये नाना रत्न विभूषिते
ताभिःसखीभिः संयुक्ता चन्द्रभानोः सुतागता।३०

नाना रत्न विभूषित रमणीय श्रीजानकी मन्दिर में उन सखियों के साथ श्रीचन्द्रभानु कुमारी आईं ॥३०॥

आनखाग्र शिरसा निखिलांगं रत्नराजि
कलया स्वकलाभिः। श्रीविदेहतनया सह रेजे
रत्न मण्डपतले स्व सखीभिः ॥ ३१ ॥

जिनको रत्न पंक्तियों से विभूषित तेज पुञ्ज विभूषण शिरसे लेकर नखपर्यन्त सजे हुए हैं ऐसी निज सखियों के समेत श्रीविदेहराज कुमारीजी के सङ्ग श्रीचन्द्रकलाजी दिव्य रत्न मण्डप में प्रकाशित होने लगीं ॥३१॥

सख्यस्तु ता राजसकेलिपेटिका विस्तार-
यित्वा बहुरंग भासकैः। पाशैः फिरंगैः किल
पुत्तलीभिर्विनिर्मिता सत्पथ पंक्तिकाऽलिभिः।३२

सखियों ने उन राजपेटियों को खोल कर नाना प्रकार के खिलौने चौशरादि के पाशायें चित्र विचित्र अनेकों

रमणीय रङ्गों से रञ्जित मनोहर ललित पुतली आदि वस्तुओं को एक एक पंक्ति बाँधकर बड़े ढङ्ग से लीला रस केलि में उपयुक्त सखिओं ने सजाई ॥३२॥

नानाविधा राजकुल प्रमोददास्तथैव दोषज्ञ विदेहजायाः । आनन्द संवर्धक वस्तुजालैः प्रपूरिता संपिटिका मनोहरा ॥ ३३ ॥ स्वकां स्वकां तांच कुमारिकास्ता विस्तार्य विस्तार्य स्वचेटि वर्गैः । चातुर्यचर्याश्चरितान् प्रसार्य क्रीडन्ति वै राज गृहांगणेषु ॥ ॥३४॥

नाना प्रकार के विनोद में प्रवीण, खेलके दुर्गुणों को जानकर उनसे दूर रहनेवाली, श्रीविदेहकुमारीजू के आनन्द को बढ़ानेवाली, अनेको भांति की वस्तुओं से भरपूर मनोहर सुन्दर ॥३३॥ अपनी-अनपी पेटियों को निज-निज सखियों द्वारा खोल-खोल कर सुचतुर चरित्र करती हुई वे राजदुलारियाँ महाराज के गृहाङ्गण में क्रीडा करती हैं ॥३४॥

तासां च माता पितरौच सूनवः पश्यन्ति लीलां सदनोपरि स्थिताः । आनन्द पूर्णाः

पुलकावली युताः प्रोल्लासयुक्ताऽश्रुकला समुत्सुकाः ॥ ३५ ।

उन जनक नगर निवासिनीमहेलियोंके माता-पिता-भाई अन्य बालकों महलों की अटारियों पर बैठकर देखते हैं उन के हृदय आनन्द पूर्ण हो जाते हैं, शरीर में रोमाञ्च हो जाते हैं प्रेम के अश्रु जलों से नेत्रभर जाते हैं, वे उत्कण्ठा पूर्वक उस दिव्य लीला का दर्शन कर कृतार्थ होते हैं ॥ ३५ ॥

श्रीमान् विदेहाधिपतिःसुनेत्रा युक्तो महोत्तुङ्ग सुखासने स्थितः । स्वकन्यकाश्चरितं रसालयं पश्यन्न तृप्तिं लभतेऽनुभूत्या ॥३६ ॥

महान् उच्च उत्तम सुखासन पर विराजमान श्रीमान् विदेह महाराज और श्रीसुनयनाजी अपनी कन्या का रस मन्दिर चरित्रों को देख-देखकर दिव्य सुखानुभूति करते हुए अतृप्त ही रह जाते हैं ॥ ३६ ॥

प्रियैः स्वकीयैः सहभूमिपालस्तथैव राज्ञी स्व सखी कदम्बकैः । समीक्ष्य चानन्द समुद्रमग्नः समुत्सुकः पश्यति भूरि-भूरिसः ॥ ३७ ॥

अपने प्रिय सखा—भ्रातादिकों के साथ महाराजा विदेह तथा अपनी प्रिय सखी दासी आदिकों के समेत विदेह महा रानी श्रीराजकिशोरीजी का तथा श्रीचन्द्रकलादि सखियों का लालायित होकर बालबिनोद देख-देखकर बार-बार आनन्द समुद्र में मग्न हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

तदा विदेहाधिपति हृदिस्थितं विस्मृत्य तद्ब्रह्म सुखं हि निर्गुणम्। पश्यन्मुहुर्जाड्य-तनोस्तनूरुहोऽभवँस्तथाऽष्टाङ्ग विधा रसोद्भवः॥३८

उस समय विदेहाधिपति अपने हृदयास्थित निर्गुण ब्रह्म का सुख भूल कर, सगुण सरस ब्रह्मशक्ति का बालवि-नोद देखकर शरीर की सुध भूल गये तथा रामोञ्च प्रस्वेदादि अष्ट सात्विक भावों का उदय हो गया ॥ ३८ ॥

ये सात्विकाश्चाष्ट विधाःशरीरे भवन्ति भावाः खलु देहिनां च। स्तंभादि घर्मोद्गम कम्पनादि शोके च मोदेऽपि यथार्ह काले ॥ ३९ ॥

जो अष्ट सात्विक भाव शोक तथा हर्ष के समय स्तम्भ-विवर्ण-प्रस्वेद-रोमाञ्च-कम्प-मूर्छादि सभी देह धारियों की

हुआ करते हैं वे सबके सब एक साथ ही श्रीबिदेह-महाराज तथा महारानी को प्रतीत होने लगे ॥ ३९ ॥

श्रीचन्द्रभानुः स्वप्रियायुतोऽसौ स्वानन्द सिन्धो रसमग्न आसीत् । स्वात्मानुभूत्येव सुपूर्णभावः सप्तार्णवोन्मेलनवत्तदा बभौ ॥४०

श्रीचन्द्रभानु महाराज तथा महाराणी श्रीचन्द्रप्रभा यह चरित्र देखकर प्रेमरसानन्द सिन्धु में मग्न हो गये, दिव्यसुखानुभूति का भावपूर्ण प्रवाह इतना बढा मानों सप्तसिन्धु एक साथ परस्पर आनन्दोन्मत्त होकर सङ्गम सुख ले रहे हों ऐसा प्रतीत होने लगा ॥ ४० ॥

निरीक्ष्य ते चन्द्रकलां कलावतिं लोकोत्तरां साधन साध्य दुस्तराम् । श्रीरामचित्तैक निबन्धकारिणीं भविष्यरूपां निगमैरगम्याम्॥४१

उन्होंने श्रीचन्द्रकला जी को देखा कि लोक विलक्षण दिव्यकलाओं से पूर्ण-श्रीरामजी के चित्त को भी वशीभूत करने वाली-वेदों को भी अगम्य-साध्य साधन भावों से

अप्राप्य एवं भविष्य में श्रीप्रियाप्रियतम जी को परमानन्द प्रदान करने वाली होगी ॥ ४१ ॥

आखेट खेलरचना पशुपक्षिसङ्घैः संयुद्ध संरुत कलस्वन शिक्षितैश्च । सम्यक् प्रपूर्ण नट नर्तक भाव सारैः संसोधिता साध्य विधोपचारैः॥४२

इसलिये आखेट (सिकारादि) खेलों की रचना-पशुपक्षियों की युद्धकला-पशुपक्षियों की बोल चाल क्रीडादि ज्ञान-नट नर्तक के भाव-गानकला-चित्रकला शिक्षणकलादि संशोधन जो साध्य उपचारों से लौकिक व्यवहार द्वारा हो सकता है वह सम्पूर्ण ज्ञान माता पिता ने कराया ॥ ४२ ॥

इत्थं तदान्योन्य सुशिक्षणात्तु विद्याविभावैश्च विदेहकन्या । तथैव सा चन्द्रकला कलानां शिक्षाविधौ पूर्णतराबभूव ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीविदेहकन्या और चन्द्रकलाजी अपनी कलाओं द्वारा परस्पर अपनी-अपनी विद्याका परिचय परीक्षा शिक्षादि द्वारा आदान-प्रदानकर अन्योन्य एक दूसरे के गुण ग्रहण कर परिपूर्ण हो गईं ॥४३॥

सुपक्षिभिः पक्षिरुतैर्जयाजये प्रयुद्धतैः शुद्धविधौ जया जये। पश्वादिशावैश्च समं हि नर्त्तनं युद्धं प्रबोधं प्रति गायनादिकम्॥४४

शुद्ध भावना से मनो विनोदार्थ अपने-अपने पक्ष के सिखलाये हुए पशु पक्षियों की युद्ध लीला प्रारम्भ हुई, पशु पक्षियों की हार जीत में ही अपनी विजय पराजय की भावना से वे अपने-अपने पक्ष के पशुओं को-पक्षियों को समान नृत्य-गायन-इङ्गितज्ञान (सङ्केत-ईशारा) आदि गुणों से पूर्ण कर दिये थे ॥४४॥

युद्धं प्रवृत्तं पशुपक्षिणां तदा तयोः कला शिक्षण युद्ध वेदिनाम्। महोत्सवस्वात्मगुणानुदर्शकैर्दासी सखीभिश्च जयैः पराजयैः॥४५॥ प्रदर्शयन्त्यात्मबलानुरूपं कला विधानं सकलास्सहर्षाः। पाठांश्च स्वान् स्वान्नभिपाठयन्त्यः सुश्रावयन्त्यश्च प्रकर्षभावात् ॥४६॥ हसन्ति चान्यांश्च सुहासयन्त्यः प्रोत्साहयन्त्यस्त्वपराश्च तास्ताः। एवं प्रवृत्तं तुमुलं महोदयं महोत्सवं युग्मबलानुरूपम् ॥ ४७ ॥

सखि और दासियां अपनी-अपनी जय पराजय का आनन्द प्राप्त करने के लिये अवस्था-बल-ज्ञानादिक में समान पशु–पक्षियों को अपने-अपने पाठ भली भांति सिखा पढ़ाकर कला शिक्षा में पूर्ण कर दिये। निज-निज गुणों को दिखा-दिखाकर श्रीकिशोरीजी को प्रसन्न करने के लिये पशु पक्षियों का युद्ध प्रारम्भ कर दिया॥ कला विधान में विशेषज्ञ सखियां इस महोत्सवको देखकर अति प्रसन्न होती हैं और एक दूसरे की विशेषताओं का गान वर्णन कर उत्साह को बढ़ाती हैं और हँसती हैं तथा श्री किशोरीजी तथा श्रीचन्द्र-कलाजू के बलानुरूप इस महोत्सव का महान् उदय देखकर प्रसन्न चित्त से तुमुलध्वनि करती हुई जय जयकार करती हैं॥४५–४६·४७॥

इन्दुप्रभायास्तनया पराभवं निरीक्ष्य सर्वा जहुसुश्च सुस्वराः। निवारयामास रुषा च मैथिली मैवं विधेयं मदभीष्ट भिन्नम्॥ ४८॥
जयं यथा चन्द्रकला लभेत्तत्तथा कुरुध्वं मयि-भक्तकामाः। इत्थं तदा प्राह निजान् जनान्मुहुः श्रीमैथिली धर्मपरा मृदुस्मिता॥ ४९॥

श्रीचन्द्रकलाजी का पराजय होते देखकर श्रीराजकिशोरी जी की सखियां अपने विजय के हर्ष में हँसने लगीं, यह देखकर श्रीमैथिलीजू रूष्ट होकर सखियोंको निवारण करती कहने लगीं कि-मेरे मनकी रुचि से विपरीत आप सब ऐसा मत करो ॥४८॥ जिस प्रकार से श्रीचन्द्रकला को जय प्राप्त हो मुझे प्रसन्न करने के लिये मेरी प्रिय सखियाँ वैसा ही कार्य करें, धर्मपरायणा मधुर मन्दस्मिता श्रीकिशोरीजी ने इस प्रकार सबको प्रेम पूर्वक समझाया ॥४९॥

एवं विलासानुभवं परस्परं विचक्षणा राजकुमारिकास्ताः। कुर्वन्ति शब्दातिगभावगोचरं प्रपश्यतां जन्मपरः शताघहम् ॥ ५० ॥

इस प्रकार परस्पर भाववर्धक हास विलासानुभव करती हुईं राजकुमारिकायें विलक्षण-अनिर्वचनीय-भावैकगम्य रहस्य सुख का अनुभव करती हैं, जिसको देखनेवालों के भी शतजन्मार्जित सभी दोष दुरित सद्यः नष्ट हो जाते हैं॥५०॥

स्वात्मानुभावं परिदर्शयन्ती कलासु सर्वज्ञतया सुशिक्षया। श्रीजानकी चन्द्रकला च सांगया प्रपूरयामास जनाभिलाषम् ॥ ५१ ॥

अपने आत्म सुखानुभव को प्रकट करती हुई, सर्वज्ञा होने से समस्त कलाओं में परिपूर्णा श्रीजानकी जी तथा श्रीचन्द्रकलाजी ने अपने साङ्ग सपरिवार सपरिकर सभीजनों के अभीष्ट को पूर्ण किया ॥५१॥

गृहे गृहे राजकुलोद्भवास्ताः कन्याः समस्ताः परिदीक्षिताश्च। क्रीडन्ति नैजात्म सुखानुभूत्या विकाशयन्त्योऽथ मुदं पितृभ्याम् ॥ ५२ ॥

ज्ञान शिक्षा से परिपूर्ण श्रीराजकुमारिकायें सभी राज महलों में जा-जाकर अपने आत्मा सुख का विस्तार करती हुईं क्रीडा करती हैं। सभी राजकन्यायें इस प्रकार अपने परिजन तथा माता पिता को परमानन्द प्रदान करती हैं॥५२॥

इत्थं च ते रूपगुणानुशोभने जाते समाने च बले न विद्यया। श्रीजानकी चन्द्रकला कलानां प्रकाशनं चक्रतुरात्मनि स्वयम् ॥ ५३ ॥

इस प्रकार जब रूप-गुण-शोभा-बल-विद्या तथा वय में समान हुई तब श्रीजानकीजी तथा श्रीचन्द्रकलाजी ने

अपनी समस्त आत्मकलाओं का स्वयं विकास कर परिपूर्ण शोभा को प्राप्त हुईं ॥ ५३ ॥

शरच्छशांकद्युति पुञ्जहारिणी त्रैलोक्यतापत्रयमूल हारणी । भावानुभावं परिदर्शयन्ती श्रीजानकी चन्द्रकला समेता ॥ ५४ ॥

शारदीय चन्द्र प्रभा पुञ्ज की शोभा का हरण करने वाली, तीनों लोक के त्रिविधतापों का उन्मूलन करने वाली श्रीजानकीजी श्रीचन्द्रकलाजी के समेत नाना प्रकार के हाव-भाव अनुभावादि दिखाती हैं ॥ ५४ ॥

नैजैर्गुणैः सा जनकस्य मन्दिरे प्रपूरयामास सखी मनोरथान् । पुत्र्याश्चरित्रं महिषी सुनेत्रा समीक्ष्य चावेक्ष्य सुखाब्धिमग्ना ॥५५॥

अपने अलौकिक गुणों से श्रीजनकजी के मन्दिर में सखियों का मनोरथ श्रीमैथिलीजी पूर्ण करती हैं । श्रीसुनैना अम्बा प्राणप्रिय पुत्री का बालविनोद देखकर सुख समुद्र में निमग्न हो जाती है ॥ ५५ ॥

अथैकदा तां जननी सखीभिः संस्नाप्य

सम्भूष्य समुत्सुका हृदि। तथैव तां चन्द्रकलां च माता चन्द्रप्रभा सा समलञ्चकार ॥ ५६ ॥

एक बार माता सुनयना ने अपनी पुत्री को स्नान करा कर सुन्दर वस्त्राभूषण पहना कर बड़े प्रेम से शृङ्गार किया उसी प्रकार श्रीचन्द्रकलाजी को भी उनकी माता चन्द्रप्रभा ने सुन्दर वस्त्रालङ्कार से अलंकृत किया ॥ ५६ ॥

नीराज्य साऽदर्शतले द्वयोर्मुखे प्रपश्यती प्रेमफलं समाप ह। मातापितृभ्यां मुदमावहन्त्यथो प्रनृत्यती वीणमृदङ्गशब्दतः ॥ ५७ ॥

आरती करके दर्पण में दोनों के मुखारविन्द देखकर दोनों माता प्रेम फल प्राप्त करती परम प्रसन्न होती हैं, माता पिता को मोद बढ़ाती हुई वे दोनों बालायें वीणा मृदङ्ग के साथ नृत्य करती हैं, ॥५७॥

सुतालसत्तान तरङ्ग गत्या सप्तस्वर ग्राम सुमूर्च्छनाभिः। संगीतरीत्या पदहस्तनेत्रजै र्भावानुभावैः रसदर्शनैश्च ॥ ५८ ॥

सुन्दर ताल-तरङ्ग-तान-स्वर-गीत-ग्राम और मूर्च्छनादि

संगीत रीति से गायन करती हुई हस्त-चरण-नेत्रादि अङ्गों द्वारा भाव अनुभावादि दिखाते हुए नृत्यरस का साक्षात् दर्शन कराती हैं ॥५८॥

कृत्वातु सख्यो बहुमण्डलाकृतिं करांगुलीभी रसकेलि दर्शनैः । वितेनिरे तानतरंग सङ्कुलं विदेह कन्या मनसः सुखावहम् ॥ ५६ ॥

सखियों ने बहुत से मण्डल नाना आकार-प्रकार के बनाकर तान-तरङ्ग से परिपूर्ण आनन्द-नृत्य का विस्तार हाथ की अंगुलियों द्वारा संकेत दिखा-दिखाकर श्रीजानकीजी के मनको सुख देने के लिये किया ॥ ५९ ॥

श्रीजानकी चन्द्रकला च मध्ये तन्मण्डले मञ्जुल पंकजाभे । नृत्ये रते भारत सूत्ररीत्या गान्धर्व वेदोक्त कलाभि दक्षे ॥ ६० ॥

श्रीजानकी जी और श्रीचन्द्रकलाजी मञ्जुल कमल कान्ति सदृश उस मंडल के मध्य में भरत मुनि के नाट्य सूत्र की रीति तथा गन्धर्ववेद प्रतिपादित कलाओं में सुचतुर नृत्य क्रीडामें रत हो रही थी ॥६०॥

साहित्य रचना कविता लताभि राच्छादितं त्रिभुवनं वत सुन्दरीभिः। चित्रार्थ शब्द चय नायक नायिकाद्यै र्भावप्रधानगुणगौरव पद्य-सारैः ॥ ६१ ॥

नायक-नायिका के प्रधान भावों से पूर्ण, गुण-गौरव विचित्र शब्द अर्थ आश्रय-साहित्य रचना-कवियों के काव्य लता से आच्छादित मनोहर सङ्गीत नृत्य दिव्य सुन्दरियों द्वारा तीनों भुवनों में फैल गया, भर गया ॥६१॥

प्रहेलिका सांगुलिकाङ्क वर्णजैः प्रस्तार विस्तार सुनाट्य कौतुकैः। गजाश्व पंचानन हंस कोक गतिं विनिर्माय च ता विजह्रुः ॥ ६२ ॥

प्रहेलिका-अंगुली के अङ्क वर्ण-प्रस्तार विस्तारादि नाट्य कौतुक कला प्रवीण कन्यायें हाथी घोड़ा-सिंह हंस-कोकादिक की गति निर्माण कर विहार करने लगी ॥६२॥

समार्तवं तत्फलरूपदर्शनं फलप्रवृत्तेगुंण वर्णनञ्च। रागानुगुण्यं तदनुक्रमेण निरूपणं स्वात्म सुखानु चिन्तनम् ॥ ६३ ॥

जिस ऋतु का जो रूप है जो फल है जो गुण है, जैसा दर्शन है उसका यथार्थ स्वरूप प्रकट करती हुई आत्म सुख का अनुभव करने के लिये यथा क्रम परम्परानुकूल वह विलास करती थी ॥६३॥

द्वात्रिंशधा तालगतिं प्रकीर्तनं ब्रह्मादितालै बहुनाट्य कौतुकम्। कुर्वन्ति ता वेद विधान पूर्वकं प्रशस्तमानं ललना रसोत्सुकाः ॥६४॥ मृदंग तालानक तूर्म्यिकाभिः साराङ्गिका वेणु सवंशिकाभिः। स्वरेश राजैर्बहु बाहुलीभि र्वीणा चतुर्धा करतालिकाभिः ॥६५॥ मंजीरिका कङ्कण किङ्किणीभिरनेकवाद्यादि विलासमूर्तिभिः। चक्रुस्तदा ता वनितास्तथाद्भुतां सभां यथा वासववैधसीं ध्रुवाम् ॥६६॥

बत्तिस प्रकार की ताल गति का गान, ब्रह्मादि, ताल के साथ प्रसंशनीय वेद विधान पूर्वक बहुत प्रकार के नाट्य कौतुक, रसलीला उत्सुका ललनायें करती हैं ॥६४॥ मृदंग ताल (मंजीरा) दुन्दभि तूरी भेरी वेणु सारङ्गी वंशी चार

तरह की वीणा, स्वर श्रेष्ठ इशराज अनेकों तरह की वाहुली करताल ॥६५॥ मज्जीर (विछुआ) कङ्कण किङ्किणादि शब्दों से और भी अनेक प्रकार की वाद्यादि शब्द जनित, विलास (मूर्तिमान आनन्द सुखों) से जैसे स्वर्ग में महेन्द्र ब्रह्मा सिद्ध देव गणों की संगीत रासलीला सभा होती हो वैसे। श्रीमिथिलेन्द्र नगर रहस्य स्थल में उन वनिता [राजकुमारियां] अद्भुत संगीत सभा करी ॥६६॥

विनिःसरन्ति श्रुतिजाति मूर्च्छना ग्रामै स्त्रिभिर्मान विभाषया शुभैः । तैल्लान्निजै ध्रु पद सर्गमतालबद्धैः सद्भाव शिक्षाक्षरगर्भितैश्च ॥६७॥ इत्थं तदान्योऽन्यकलासु कौशलं प्रदर्शयन्त्यः परमानुमोदितः। श्रीजानकी चन्द्रकला प्रमुख्याश्चक्रुश्चरित्राणि मनोहराणि ॥६८

श्रुतियों से प्राप्त मुर्छना, तीन प्रकार के ग्राम, मान, सुन्दर विभाषा से युक्त जाति भेद से कई तरह के तिलाना ध्रुपद शर्गमादि तालों सेबँधे, श्रेष्ठ भाव शिक्षा से गर्भित, वाजावों के द्वारे, वनितायें गण निकासती हैं ॥६७॥ इस

प्रकार कला कौशल को देखाती हुई परमानन्द निमग्न श्री-मैथिली जी श्री चन्द्रकलादि प्रमुख्या सखि गणों ने मनोहर चरित्रों को दर्शाने लगीं ॥६८॥

श्रीभैरवाख्य नट-सोरठ-मालकोश-मल्लार दीपक-वसन्त मनोहराङ्गकाः। नित्यं वसन्ति वनिता सुखसिंधु रूपे श्रीमैथिलेन्द्र नगरे जन-कात्मजायैः ॥६९॥

श्रीराग-भैरव-नट-सोरठ-मालकोश-मलार-दीपक वस-न्तादि नाना प्रकार के राग मूर्तरूप से वनिताओं के सुख समुद्ररूप श्रीजनकपुर में श्रीमिथलेन्द्र दुलारी के सुखार्थ नित्य निवास करते हैं ॥६९॥

वनेषु-सर्वेषु-सरोवरेषु-नदीषु-सर्वास्वपि पर्वतेषु। गन्धर्व विद्याधर किन्नराद्या राजर्षि सिद्धाः परितश्च पुर्य्याः। ७०॥ चक्रुर्निवास स्थलशोभनानि वासाय भौमेषु मनोनिरोधतः। श्रीजानकी राम सुखानुभूतये चिरोषतुर्गौतम याज्ञवल्क्यौ ॥ ७१ ॥

सभी वन-सरोवर-नदी-पर्वतादि श्रीमिथिला के सन्निकट सुन्दर स्थलों में गन्धर्व-विद्याधर-किन्नर-सिद्ध-राजर्षि चारों ओर पुरी के ॥७०॥ वास करने लगे, मनो निरोध पूर्वक रमणीय स्थलों को देखकर महर्षि गौतम तथा याज्ञवल्क्यजी चिरकाल पर्यन्त मिथिला में श्रीसीताराम जी की ललित लीलानुभूति का सुख पाने के लिये आश्रम बनाकर रह गये ॥७१॥

भविष्यदर्थंतु प्रतीक्ष्यमानौ वैवाहिकं श्रीजनकात्मजायाः। रामेण सार्द्धं रसभावयुक्तं भावं रहस्यं विबुधैरगम्यम्॥ ७२ ॥

श्रीगौतम और महर्षि याज्ञवल्क्य श्रीसीताराम जी का भविष्य होनेवाला विवाहोत्सव देखने की इच्छा से देवदुर्लभ रसभावयुक्त रहस्यसुख पाने की कामना से प्रतीक्षा करने लगे ॥ ७२ ॥

भूयो-भूयो भूरिभावानुरक्ता नानाभावैः श्रद्धधाना मुनीन्द्राः। शान्ता दान्ता दानयज्ञ प्रवीणा वेदान्तज्ञा वैदिकाचारनिष्ठाः ॥ ७३ ॥

ध्यायन्ति केचित्परम प्रकाशं केचिद्वदन्ति परमं मनसामगोचरम्। केचिद्ब्रुवन्ति निखिलात्मगतं तुरीयं सीतासमालिङ्गितमेघनीलम्॥७४॥

वे शान्त-जितेन्द्रिय-दान और यज्ञ प्रवीण-वेदवेदान्त-तत्त्वज्ञ, वैदिक आचार विचार निष्ठ-श्रद्धा सम्पूर्ण हृदय अत्यन्त भावपूर्ण ॥७३॥ मुनियों के समूह मे कोई-कोई परम प्रकाश स्वरूप परम परमात्मा का ध्यान करते हैं तथा कोई-कोई मन वाणी से परब्रह्म स्वरूप का वर्णन करते हैं कोई कोई कहते हैं कि जो निखिल आत्म गत पूर्णतम सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म श्रीसीताजी को आलिङ्गित कर मेघनील के समान शोभायमान सुन्द्रेन्द्र वही हमारा उपास्य है ॥७४॥

उपासयन्ति राघवं विदेहजा समन्वितम्। मुनीश्वरा क्वचित्क्वचिद्विविक्त आश्रमेस्थिता॥७५

श्रीमिथिला के वन-उपवन में कहीं-कहीं एकान्त में आश्रम बनाकर बसे हुए मुनीश्वर श्रीविदेहजा समेत श्रीराम जी की युगल उपासना करते हैं ॥७५॥

केचित्पुराणं पुरुषोत्तमं विदुः परात्परं केचिदनन्तमाहुः। स्वमात्मशक्त्या परिबृंहितं तल्लीला विहारेण रसेन युक्तम् ॥ ७६ ॥

कोई-कोई मुनीश्वर पुरातन पुरुषोत्तम परात्पर तथा जिस को अनन्त प्रभु कहकर वर्णन करते हैं वही अपनी आत्म-शक्ति से सम्पन्न लीला विहार करने के लिये रस विग्रह बनकर श्रीमिथिला में प्रकट हुए हैं ऐसा कहते हैं ॥७६॥

एवं चतुर्दिक्षु मुनीश्वराणां देवालयं पुष्प-चयावकीर्णम्। कासार पद्माकर भृङ्ग पक्षिभि-र्वने-वनेच।श्रममण्डलं शुभम् ॥७७॥

इस प्रकार श्रीजनकपुर के चारों ओर मुनीश्वरों के आश्रम मण्डल-देवालय-पुष्प वाटिकायें-कमल वन सुशोभित निर्मल जलाशय-क्रीडा केलि मग्न सुन्दर पशु पक्षी-अत्यन्त शोभा देते हैं ॥७७॥

क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे सुवाटिका लताचयैः-सुरेश देवतालयै र्विनिर्मितं मनोहरम्।

सहस्रशो नृपालयैर्वृतं समाहितैर्जनैः-
शतघ्निदुर्ग दुर्जयैः प्रकाशधूम पूरितम् ॥७८।

कहीं-कहीं वन उपवन में वाटिका-लता-पुष्पक्यारियां के बीच देवताओं के मनोहर मन्दिर हैं, हजारों राजवंश के राजभवन हैं तथा उनके अनुगामी सेवक सुहृदों के भवन हैं, दुर्जयकोट, तोप आदि रक्षक अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित प्रकाश किरण और मृत्युधूम आदि पर पक्षी सेना को नष्ट करने वाले साधनों से सम्पन्न नगर सुरक्षित है ॥७८॥

आरामै रमणीचयैः प्रतिदिशं पूर्णः सरि-
द्वारिभि र्वापी कूप तडाग दिव्य सरसैः कुञ्जै-
रनेकैः शुभैः। हिन्तालैः पनसैः सुपूगनिवहैः
सन्नारिकेलालिभिर्नारङ्गै र्विविधैःफलैः समुदि-
तैर्भूमिस्सदा राजते॥ ७९ ॥

पुष्प वाटिकाओं में सुन्दरियां चारों ओर शोभा पूर्ण कर रही हैं। स्वच्छ शीतल सुवासित जल से भरी नदियां सदैव बहती रहती हैं वापी कूप-तडाग-दिव्य सरोवर अनेक कुञ्ज निकुञ्जोंसे सुशोभित है। हिन्ताल (कटहर) सुपारीनारियल

केला-नारङ्गी आदि फल फूलों के विविध पुष्प वृक्षों से श्री-मिथिलाभूमि सदैव सुहावनी लगती है।।७६।।

सीतापदाम्भोज परागरक्ता विभाति भूमिः सुरसङ्घ भूषिता । घनावली मत्त मयूरिका वृता सौदामिनी तुङ्ग तरङ्ग मालिनी।। ८० ।।

घनावली को निहार कर मतवाली मयूरिका तथा ऊच्च पर्वत शिखराकार मन्दिरों पर विद्युत तरङ्ग मालाओंसे वेष्टित श्रीजनकजा पद कमल पराग अनुरागी भक्तजनों से विभूषित सुरसङ्घ सेवित श्रीमिथिलाभूमि विराजती हैं ।।८०।।

यत्रापि श्रीचन्द्रकला प्रभावात्प्रद्योतते चिद्घनता त्रिलोक्याम् । सर्वे पुरस्था हि सुखे निमग्नाः क्रीडन्ति वै पञ्चजनाः सुखेन ।।८१।।

जिस जनकपुर में श्रीकिशोरीजी की सर्वश्रेष्ट-सर्वाधिक प्रिय सखी श्रीचन्द्रकलाजी के प्रभाव से त्रिलोक का सच्चिदानन्दघन आनन्द पुञ्जीभूत होकर प्रकाशित हो रहा है उस विदेह नगर के निवासी सभी-पञ्चजन सुख सिन्धु मग्न होकर क्रीडा करते हैं ।।८१।।

लोकेश विष्णु हर शक्रनिलिम्पवर्गाः सत्प्रेमपूर्ण हृदयात्मगणैः समेताः । रक्षन्ति तत्परतया च हरित्सु ते वै संद्रष्टुमत्रसुमहोत्सवमादिदेवाः ॥ ८२ ॥

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-इन्द्रादि समस्त लोकपालक आदि देव अर्थात् और भी जो ऊंचे कोटि के देव सब हैं वे अपने प्रिय स्वजन-सेवक-गणादि परिवार समेत प्रेमपूर्ण हृदय से सद्भावनायुक्त बड़ी तत्परता से विघ्नों का निवारण करते हुए श्रीसीताराम विवाह महोत्सव देखने के लिये श्रीधामका नाना रूप से संरक्षण करते हैं ॥८२॥

ते पुष्पवृष्टिं नितरां प्रचक्रुः स्तुतिश्चनाना श्रुतिभावपूर्णाः । नाट्यानि वाद्यानि सहाप्सरोभिः सन्तः प्रहर्षात्परितो विरेजुः ॥ ८३ ॥

अप्सराओं के साथ नृत्य-गान-वाद्यादि द्वारा श्रीकिशोरीजी के गुणगान के आनन्द में मग्न होकर देवतागण वेदवेदान्तभावपूर्ण स्तुति गान करतेहैंवारम्बार हर्षोन्मत्त चित्त से फूलों की वृष्टि वरसाते हैं ॥८३॥

एवं महोत्साह विभूषितापुरी विभाति नित्यं मुदितैर्जनैर्वृता। महोत्तमा श्रीमिथिलेन्द्रपालिता श्रीजानकीपूर्ण कृपास्वरूपिणी ॥ ८४ ॥

इस प्रकार महान् उत्साह महोत्सव पूर्ण प्रमुदित नगर निवासी नर नारियों से परिपूर्ण-श्रीजानकीजी की पूर्ण कृपा मूर्ति स्वरूप श्रीमिथिलेन्द्र पालित जनकपुर धाम महान् उत्तम लगता है ॥८४॥

तयोश्च सत्प्रेम सुरम्य सम्पदा विवर्धमानोर्मि सहस्रसंकुला। सुरम्य रत्नालयराजि निर्मिता साक्षाद्रमापूर्णकलेव निर्मला ॥८५॥

श्रीविदेह महाराज और श्रीचन्द्रभानु महाराज का वैभव-सम्पदा प्रेम-उस रत्नपंक्ति निर्मित राजमहल में सहस्रों प्रकार से नित्य बढ़ने लगी। ऐसी शोभा हो रही है जैसे साक्षात् लक्ष्मी निर्मल निष्कलङ्क होकर रमणीयतम रूप से प्रकाशित हो रही हो ॥८५॥

कासार पद्मानि प्रफुल्लकानि नैर्मल्य कानि परिपूर्णतया शुभानि। गुञ्जार शब्द मधुपालि

समुद्गतानि सोपान पंक्तिरिव भास्वरभासितानि ॥ ८६ ॥ वेद्यानि हेममणिकुट्टिमघट्टितानि प्रासादपंक्ति प्रतिबिम्ब समोन्नतानि । सिंहासनानि सुरवृत्तलता स्थितानि रासाजिराणि च शुभानि विभान्ति सर्वतः ॥ ८७ ॥

निर्मल सुवासितजल तथा प्रफुल्लित कमलों से सुशोभित जिन पर भ्रमर सुन्दर शब्दोंसे गुञ्जार कर रहे हैं सूर्यकी किरणों से जगमग करती रत्न सोपान की पंक्तियाँ प्रकाश करती हैं ॥८६॥ स्वर्ण और मणि रत्ननिर्मित घाट-वेदिकायें महलों की पंक्तियाँ उन जलाशयों में प्रतिबिम्बित हो रही हैं, सुन्दर सिंहासन कल्पवृक्ष-कल्पलता-रास विहार के विशाल चौक आदि रम्य स्थल चारों तरफ पुर की मनोहरता विशेषता शोभा शतगुण वृद्धि करते हैं ॥८७॥

सच्छत्र चामरयुतानि मनोहराणि सच्चन्द्रमण्डलनिभानि सुचित्रितानि । श्रीमैथिलेश तनया पद बद्धचित्ताः संसेवनाय परितो हि चरन्ति सख्यः ॥ ८८ ॥

सुन्दर छत्र-मनोहर चमर-पुष्पमालादि सुश्रृङ्गार सामग्री लेकर श्रीमिथिलेशराज दुलारीजू के चरणों में आसक्त चित्त वाली अलियां चारों ओर चन्द्रमण्डल की भांति सेवा परिचर्या में लगी रहती हैं ॥८८॥

श्रीजानकी चन्द्रकला समेता विहर्त्तु कामा विजने वने च। जले स्थले कुंज विलासिनीभिः क्रीडत्यसौ कन्दुक खेटकाद्यैः ॥८९॥

निकुञ्ज विलासिनी सखियों सहित श्रीचन्द्रकला जी समेत श्रीजानकी जी निर्जन वन विहार कुञ्जों में जल क्रीडा स्थल विलास तथा कन्दुकादि खेल सानुराग खेलती हैं॥८९॥

प्रदर्शयन्तीभिरनन्त कौतुकान् पुष्पाव गुम्फनचयान्ननुमोदजांस्तान्। गायत्यथोच्च स्वर संचितानि पाठ्यानि विध्यादि सुदुर्लभानि ॥ ९०।

पुष्प सञ्चय-फूलमाला गुंथना-उच्चस्वर-का गान-ब्रह्मादि सुदु-र्लभराग पाठादि अनन्त कौतुकों का मधुर प्रदर्शन करती हैं ॥९०॥

यन्त्राणि मन्त्राणि च चेटकानि प्रसिद्ध-विद्याःसकलाश्च सर्वाः। श्रीचित्रलेखादि विचित्र विद्यया ह्याकर्षणादीनि तदाश्रयाणि ॥६१॥

यन्त्र-मन्त्र-जादू टोना—आकर्षणादीनि विद्या-चित्रलेखा विद्या (जिसका चित्र बनावे उसका आकर्षण करना) आदि विचित्र विद्यायें और जो उन विद्याओं के आश्रित अन्य उप विद्यायें हैं वे सब आप श्रीराजकिशोरीजी प्रकट करती हैं॥९१

प्रस्वापनानि विविधानि च मोहनानि कल्याणदानि किल विस्मय कारकाणि। वैलक्षितानि विधिशम्भु विमोहकानि कर्माणि तानि रुचिराणि तदा वितेनुः॥ ९२॥

मोहित करना, मूर्च्छित करना-गाढ निद्रा में सुलादेना, शान्त कल्याण स्वरूप बना देना आदि विलक्षण प्रयोग जो ब्रह्मा और शिवको भी आश्चर्य में डाल दे ऐसे रमणीय कार्यों को श्रीचन्द्रकलादि सखियां विस्तार करके दरशाने लगीं ॥९२॥

इत्थं समासाद्य विनोद विद्यां लीला विहा-

राय सखी सुखार्हाम् । श्रीमन्महाराज सुता सखीभिः श्रीचन्द्रभानोस्तनयादि युक्ता ॥६३।

इस प्रकार की अलौकिक विनोद विद्या पाकर सखियों को सुख देनेवाली लीला बिहार करने के लिये श्रीचन्द्रभानु कुमारी के साथ अन्य सखियों समेत श्रीविदेह राजकुमारीजी क्रीडा स्थल में विराजमान थीं ॥६३॥

अथो तदा श्रीमिथिलेशजाज्ञया सुसारिका हन्त शुकी समाययौ। सन्देशमानेतुमितः सुशिक्षया राजेन्द्रपुर्यामथ साससाद ॥ ६४ ॥

शीव जी कहते हैं हे-हन्त--(हेप्रिये उसी समय शुकी और सारिका दोनो श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू की आज्ञासे समाचार लाने के लिये सुशिक्षासम्पन्न होकर राजेन्द्रपुरी श्रीअवध में यहाँ से गयीं ॥९४॥

दृष्ट्वा हि सर्वावनिरासजं सुखं श्रीराघवं मण्डल मध्यसंस्थितम्। प्रफुल्लितांगाश्रुकलाकलावती चानन्द खेलोद्भवमुत्समुत्सुका ॥६५।

उन शुकी और सारिकाने श्रीभूसाकेत अवध में आकर देखा कि श्रीराघवेन्द्र प्रभु भूमण्डल पर दिव्य रासलीला रस बरसा रहे हैं. यह अलौकिक आनन्द देखकर उनका शरीर प्रेमानन्द रसमें मग्न हो गया। आंखोंमें भावाश्रु तथा रोमांचादि सात्त्विक विकार प्रकट हो गये, बड़ी उत्कण्ठा से उन्होंने रास रहस्य का दर्शन किया ॥९५॥

शुकी समागत्य सुसारिकायुता प्रोत्साह-युक्ता वचनं तदाब्रवीत्। अयिप्रिये त्वद्रहितं रहःस्थिते करोति रासं प्रमदागणावृतः ॥९६॥ दुःखप्रदं तत्कुल कामिनीनां शोकास्पदं प्राणहरं दुरत्ययम्। नृत्यैश्च वाद्यैःपरिशोभितं महद् भवादृशीनां विरहाग्नि दीपनम् ॥ ९७ ॥देवा-सुराणामपि मोहदायकं देवांगनानामपि भावनास्पदम्। प्रमुद्गने शारदचन्द्र चन्द्रिकावृतेप्रफुल्ले रघुवंश वर्धनः ॥ ९८ ॥

शुकी और शारिका श्रीजनकपुर में आकर श्रीस्वामिनी जू से अवध का समाचार उत्साह में भरी हुई निवेदन करने

लगी हे प्रिये आप से विरहित होकर भी अकेले अन्य प्रम-दाओं के साथ शरद पूर्णिमा के चन्द्रमंडल के प्रकाश से आवृत फूल फल से पूर्ण सुशोभित एकान्त स्थल प्रमोदवन में अनेकों प्रमदा गण से आवृत (घेरे) हुए रासेश्वर राजेन्द्र नन्दन रास विहार करते हैं जो [रास विहार] नृत्य गान वाद्य से महान् परिशोभित कुलवन्ती ललनाओं को अत्यन्त दुख दायक शोक स्थान प्राणहरक वेदना उत्पादक और आप के शदृश उत्तम नायिकाओं को विरहाग्नि संपादक देव असुरों का भी मोह दायक देवाग्नों को भी भावना स्थान है ॥ ९६-९७-९८ ॥

सीतासमालोक्यदशामिमां तयो र्जिज्ञासितूं
तच्चरितं मुहुर्मुहुः। स्वाङ्के विधाय परिपृच्छति
तद्रहस्यं वृत्तं तदीयमपरं निगमागमान्तम् ।९९

श्रीकिशोरीजी उनकी प्रेमदशा देखकर भली-भांति प्रियतम का चरित्र जानने के लिये अपनी अमृतमयी वात्स-ल्यरसभरित गोद में बड़े प्रेम से शुक सारिका को बैठाकर वेद-शास्त्र-पुराणों को भी दुर्गम ऐसा श्रीराम-रहस्य स्नेह पूर्वक पूछने लगी ॥९९॥

शरच्छशाङ्कोदित वन्यवर्णनं तथा सरयूवादि तरंग वर्णनम् । श्रीमन्महारास प्रमाण निर्णयं प्रत्यूचतुस्ते मृदु मंजु वाक्यतः ॥१००।

श्रीजनकराज तनयाके स्नेह लालित कर कमल स्पर्शका परम सुख पाकर शुकी तथा सारिकाने मीठे-मृदुल वचनों द्वारा श्रीमन्महाराजकुमार के महारासका प्रमाण पूर्वक वर्णन किया, शरदूपूर्णिमा के उज्वल प्रकास में श्रीप्रमोदवन की-वनी हुई शतगुणित शोभा तथा श्रीसरयू जी की धवलधार तरङ्ग विलास लहरी का अति उत्तम बर्णन किया ॥१००॥

यत्रागताः किन्नर नाग सिद्ध गन्धर्व विद्याधर यक्ष कन्याः । अप्राकृता मानुष राज कन्या देवाङ्गनाश्चाप्सरसः समग्राः ॥ १०१ ॥ रामेण साकं रस रासकुंजे रासः प्रवृत्तो महता क्रमेण । विना भवत्या भवतीह भीषणं सुखं कथं स्यान्महतां मनोभवम् ।१०२।

तत्पश्चात् किन्नर-नाग--सिद्ध-गन्धर्व-- विद्याधर--यक्ष देवता-अप्सरादिकों की कन्याये' अप्राकृत राजकन्यायें सभी

उस रासकुञ्ज में श्रीरामभद्रजू के साथ रासरस सुख प्राप्त करने की इच्छा से बड़े उत्साह से सर्वोत्तम ठाट बाट सजावटसे रास प्रारम्भ किया, परन्तु बिना आप के प्रियतमजू को वह सुख समाज सब भयङ्कर लगता है, बिना आपके उन महापुरुष को आत्मीय मनो भव जन्य सुख कैसे हो सकता है॥ १०१-१०२ ॥

तत्रस्थले श्रीरघुराजसूनुः शरन्निरीक्ष्यातुर दीनमानसः। वियोग दावानल दग्धगात्रो न त्वां विना किमपि कर्तुमसौ समर्थः॥ १०३ ॥ तस्मात्प्रिये दर्शय वैभवं निजं येनाप्यसौ हृष्यति भावतः सतः। अहं करिष्यामि महोत्सवं सुखं प्राणप्रिये ते हृदये महत्तरम्॥१०४॥

उस परम रम्य स्थल में सुन्दरतम मनहरण करनेवालीसर्वोत्तम सामग्रियों को देखकर शरद पूर्णिमा का आनन्दोल्लास वर्द्धक पुण्य समय निहार कर श्रीरघुराजकुमार आपके बिना कुछ भी लीला न कर सके और आपके वियोग दावानल में प्रियतम का शरीर जलने लगा, इस लिये हे प्रिये ! आप अपना वैभव-सुख विलास प्रकट करें जिस करके वह प्राण प्रिय सतसह भावसे हर्ष को प्राप्त होवैं और हे प्राणप्रिये!

मैं भी आज आपके उस महत्तर महोत्सव सुख को हृदय में पानकर तृप्त न हूँगा। यह तो आपके हृदय का ही महान् सुख है, आपके बिना यह कैसे प्राप्त हो सकता है॥१०३-१०४

आकर्ण्य सीता प्रिय मानसं रुजं वियोगजं शोकमनल्पसात्कृतम्। प्राप्तिं करिष्यामि कथं विचार्य्य तत्पपात भूमौ न शशाक साहसम्॥ १०५॥

ऐसा समाचार सुनकर श्रीप्रियाजू अपने प्रियतम शोक के कारण छोटामन [उदास चित्त] किये हुए विरह दुःख से व्याकुल हैं "मैं कैसे उनकी प्राप्ति कर सकूँगी" इसी विचार में अचेत हो गईं, भूमि पर गिर पड़ी अपना देह सम्हालने का साहस भी न रहा॥१०५॥

निरीक्ष्य सर्वा विकलाः स्म जाता दशा वियोगस्य दशात्म सम्भवाः। नानोपचारैश्च विचारणैरपि कुर्युस्तदानीं बहुसाधनानि।१०६

स्वामिनीजू की ऐसी आत्म संभवा दश दशा देखकर

सभी सखियां बिकल हो गईं [दशदशा] लालसोद्वेग जागर्या स्तानवं जडि मात्रतु वैयग्रयं व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश ॥ वियोग जन्य प्रियाजू की उस पीडा का निवारण करने के लिये सभी नाना विध उपचार तथा बिचार द्वारा समझाने बुझाने के अनेकों उपाय करने लगी ॥१०६॥

उत्कण्ठितां वीक्ष्य सखी किशोरीं कला-विदा चन्द्रकला चलाक्षी। समीपमागत्य विचार्य रोगं मृदुस्मिता प्राह रुजं निवृत्त्यै ।१०७॥

कलानिपुणा-चञ्चल लोलाक्षी-नेत्र से देख कर हृदय की बात का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाली सखी श्रीचन्द्रकला जू श्रीकि-शोरी जी की प्रियतम के वियोग में उत्कण्ठिता दशा देखकर उनके समीप चली गईं, तथा रोग का विचार पूर्वक जान-कर मधुर मन्द हास मिश्रित रोग को मिटाने वाली मञ्जुल वाणी बोली ॥ १०७ ॥

किं ते रुजं प्राणसुखेऽभवत्तनौ तद्ब्रूहि सत्यं सपथेन मामकम् । प्राणान्प्रदास्यामि तवार्थ मंजसा वदामि सत्यं नहि मेऽन्यथा वचः ।१०८

हे प्राण सुखे प्राण के सुख देने वालि हे स्वामिनी जू आपके यह मंगल विग्रह में कौनसा रोग हुआ है वह आपको मेरी सपथ है आप विना सङ्कोच के मुझसे कहिये। मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहती हूँ कि अपने प्राणों को निछावर करके भी–आपको जिस प्रकार से सुख प्राप्त हो वह कार्य मैं अवश्य बिना विचारे शीघ्र करूँगी, मेरा भाषण कभी मिथ्या नहीं हो सकता ॥ १०८ ॥

इत्थं समाकर्ण्य समुत्सुकाया वाचोऽमृताया रति संयुतायाः। श्री जानकी प्राह तदा सुवृत्तं वियोग सन्तापभवं सुदुःखम् ॥ १०९ ॥

इस प्रकार अत्यन्त उत्कण्ठापूर्ण-अमृतवादिनी श्रीचन्द्रकलाजी की प्रेमरसपूर्ण वाणी सुनकर श्रीजानकी जी ने अपनी आत्मीय आली से अपनी आन्तरिक प्रियतम वियोग जन्य वेदना के सन्ताप का दुःख निष्कपट भाव से कह सुनाया ॥ १०९ ॥

निशम्यवाक्यं विरहारुजाजनि जहास सा चन्द्रकला विचक्षणा। मनोरथान्पूरयितुं तव

प्रिये यत्नान्करिष्यामि तव प्रसादतः ॥११०॥

विरह वेदना व्यथित प्रिया जू की वाणी सुनकर विलक्षण बुद्धिमती श्रीचन्द्रकला जू हँसकर बोलीं-हे स्वामिनी जू! आपकी कृपा से हम जिस प्रकार आपके मङ्गल मनोरथपूर्ण हो जाय वैसा ही उपाय करूँगी ॥११०॥

एवं प्रबोध्याशु विचिन्त्य स्वागताश्चाष्टौ विधायाति विचित्र योगिनीः। श्रीचित्रलेखादि कला सुपण्डिताश्चन्द्रप्रभायास्तनयेत्युवाचताः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीस्वामिनी जू को समझाकर अपने मनमें उनकी पीडा निवारण करने की इच्छा करने लगी, उसी समय अष्ट योगिनी नाना प्रकार की चित्रलेखाकलादिक में परम प्रवीण पण्डिता सेवा में उपस्थित हुईं, उनको श्रीचन्द्रकलाजी ने ऐसी आज्ञा प्रदान की ॥ १११ ॥

प्रयान्तु शीघ्रं रघुराज पालिनां साकेत नाम्नीं श्रुति शास्त्र सिद्धाम्। रासस्थली मानयतात्मशक्तिभिः प्रोत्पाट्य निर्लक्ष्य इहाद्य सत्व-

रम् ॥११२॥ वृक्षान्मृगान् पर्वत राजि राजि-
तान् सचत्वरैर्हैम्र्य युतैरशोककैः। विलासिनी
भी रघुराज पुत्रं रासे प्रवृत्तं नृति गीतिसंयु-
तम् ॥ ११३ ॥

श्रुति शास्त्र प्रसिद्धा—श्रीरघुराजनरेश पालिता श्रीअयो-
ध्यापुरी आप सब शीघ्रातिशीघ्र जाओ, तथा रासक्रीडा में
निरत नृत्य गान प्रवीण राजकुमार श्रीराघवेन्द्र जू के समेत
सुन्दर वृक्ष लता-वितान नदी-पर्वत श्रेणी—हेममन्दिर-
अशोकवाटिका—मृग--पशु--पक्षी--और विलासिनी नारियों
के समेत प्रमोद विपिन अन्तर्गत रासस्थली को अपनी दिव्य
आत्मशक्ति से उखाड़कर आज ही यहां इस प्रकार ले आओ
कि उसको कोई जान भी न पावे ॥ ११२-११३ ॥

निशम्य ताश्चन्द्रप्रभासुताया वचांसित—
त्प्रीति समन्वितायाः। जग्मुस्तदा ता रघुराज
धानीं रासस्थलीं यत्र प्रमुद्वनान्तरे ॥११४॥

श्रीचन्द्रप्रभाकुमारी जी के ऐसे वचन सुनकर वे अष्ट
योगिनी बड़े अनुराग से श्रीरघुवंश राजधानी श्रीअयोध्या

जी के प्रमोद वनान्तर्गत रासलीला का स्थल जहां पर था वहां तुरन्त पहुँच गई ॥ ११४ ॥

रत्नाचलं सोमवटेन सार्धं कामेश्वरं निर्जर वृन्द वन्द्यम् । रासस्थलीं कल्पित वेदिकाभिः सभूमि भागे मृर्गशावकैर्वृतम् ॥११५॥ रम्भा रसाल पनसालिकदम्बद्राक्षा नारङ्ग तिन्दुखर्युर स्थित नारिकेलैः । कल्लोलिनीतट समुत्थित वालुकान्तां पुष्पावली कलित कानन कोमलान्ताम् ॥ ११६ ॥

प्रमोदवन के अन्तर्गत रत्नाद्रि (मणिपर्वत) सोमवट· देवगण वन्दित कामेश्वर भगवान्-सुन्दर वेदिका तथा सुन्दर मृगबालकों से शोभित भूखण्ड ॥ ११६ ॥ केला-आम-कटहर-कदम-द्राक्षा-नारङ्गी-तिन्दु खर्यूर आदि सुवृक्षावलि वेष्टित श्रीसरयू नदी की ललित कलित लहरियों, स्वच्छ कोमल चमकती वालुका पुष्पवाटिका-वन उपवन की कोमल वृक्षलतादि युक्त रासस्थली ॥ ११५-११६ ॥

लता प्रवालाञ्चित शाद्वलानि नानाविधैः

पक्षिरवैर्युतानि । घट्टानि सौवर्ण विनिर्मितानि जलानि शुद्धानि सरोवराणि ॥११७॥ प्रासाद मालावितताति तानि कदम्ब सर्जार्जुन संयुतानि । स्वच्छानि सोत्तुङ्ग तरङ्गितानि प्रोत्फुल्ल कञ्जानि सुचित्रितानि ॥११८॥

सुन्दर लता वितान-नाना प्रकार पशु पक्षियों का सुन्दर कलरवमणिसुवर्ण रचित मनोहरघाट-शुद्ध निर्मल सुगन्धित शीतल जल भरित जलाशय-बड़े विशाल ऊँचे-ऊँचे कनक मन्दिरों की माला (पंक्तियाँ) कदम-अर्जुन-सालादि सुभग महावृक्ष-निर्मल जल पूर्ण नदियों की लहरियों की तरङ्ग माला-रङ्ग विरङ्गी ताजे खिले हुए नव कमलादि द्वारा परम शोभास्पद रासस्थली की छटा देखकर ॥ ११७-११८ ॥

दिक्ष्वष्ट सद्योजन सम्मितां भुवं समूल मुत्पाटन केलि तत्पराः । बालास्तदा ताश्च धिया बलेन वै प्रोत्पाटयामासुरमोघ वैभवाः॥११९

अपनी विद्या के बल से अन्वर्थ वैभव बल सम्पन्ना उन बालाओं ने अष्टो दिशा से शत योजना प्रमाण समान

भूमि विलास केलि परायण योगिनी कन्यायें रास क्रीडा स्थल उखाड़कर ले चलीं ।। ११९ ।।

शीघ्रं समासाद्य विदेहजं पुरं नो लक्ष्यते प्रीति भरेण सत्वराः । संस्थाप्य युक्त्या मिथिलावने तदा समागता श्चन्द्रकलोपकण्ठके ॥ १२० ॥ ऊचुश्च तां चन्द्रकलां सहर्षं वृत्तं तदानीं विधिवत्समासतः । कृतं भवत्या गदितं नियोगतः क्षमस्व मे देवि सदापराधकान् ।१२१

कोई न जान सके उस प्रकार युक्ति पूर्वक प्रेम से भरी हुई अति वेग से शीघ्र ही जनकपुर श्रीमिथिला जी के उपवन में स्थापित कर श्रीचन्द्रकला जी के सम्मुख सावधानी से आईं ॥१२०॥ हर्षोत्कण्ठा से भरपूर विधिपूर्वक क्रमशः सभी वृतान्त यथावत् संक्षेप से श्रीचन्द्रकला जू को सुनाते हुए हाथ जोड़कर विनय भाव पूर्वक बोलीं-हे देवि ! आपकी आज्ञानुसार यथाशक्ति सब कार्य सम्पन्न किया, भ्रमवश सेविकाओं से कोई अपराध हो गया हो तो कृपाकर क्षमा करें ॥ १२१ ॥

साङ्गं सवाद्यं सगणं सकाननं सनायिका मण्डित रासमण्डलम् । संस्थाप्य भूमौ मिथिला महीपतेस्तदा सुसख्यो जहसुमुर्दान्विताः ।१२२

अङ्ग सहित-गण सहित-बाजा गाजा समेत-नदी कानन-नादि समेत नायक नायिका युक्त रासमण्डल श्रीविदेहमहाराज की भूमि में संस्थापित कर प्रसन्नता पूर्वक सखियां आनन्द से हँसने लगी ॥१२२॥

प्रशस्यताश्चन्द्रकला प्रहर्षान्ननाम सीतां पुनरेव भूरिशः । प्रसाध्य तं राजकुमारवर्य्यं नयामि शीघ्रं तव दर्शनाय ॥ १२३ ॥

उन सखियों को कार्य की सफलता से प्रसन्न होकर प्रसंसा करती हुई बार-बार धन्यबाद देती हुई पुनः श्रीकिशोरीजी को प्रणाम कर श्रीचन्द्रकलाजी बोली-हे स्वामिनीजू मैं चक्रवर्ति राजकुमार के पास जाती हूँ और उनको समझा कर शीघ्र ही आपके दर्शनार्थ प्रेमपूर्वक ले आती हूँ॥१२३॥

तं जालरन्ध्रेण निरीक्ष्य सत्वरा मुहुर्मुहुः सम्मिलने समुत्सुका। उवाच वाक्यं त्वरया

शुभे प्रिये हे चन्द्रकान्ते त्वयि जीवनं मम ।१२४

राजकुमार श्रीराघवेन्द्रजी को झरोखा के जालरन्ध्र (चिक) की ओट से देख-देखकर अति प्रेम परवश बार बार मिलने की इच्छा से परमातुर वानी श्रीकिशोरीजी श्रीचन्द्र-कलाजीसे बोली "हेचन्द्रकान्ते! अब मेरा जीवन आपके ही कर कमलों में है" इस प्रकार ॥ १२४ ॥

ततस्तदाकर्ण्य सुभाव दीपकं विदेहजाया वचनं समाहिता। अद्यैव सञ्जीवन जीवरूपिणं प्रदर्शये चन्द्रकलेत्युवाचताम् ॥ १२५ ॥

भाववर्धक श्रीविदेहराजललीजूका वचन सावधान चित्त से श्रवण कर धैर्य धराती हुई श्रीचन्द्रकलाजी "आज ही जीवनधन प्राण प्रियतम राजकुमार का दर्शन आपको करा दूँगा" ऐसा श्रीजानकीजीके प्रति मधुर वचन बोली॥१२५

चान्द्री कलां सा सुवितीर्य सम्यक् दिव्य-न्तरीक्षे गिरि गह्वरे च। निजाङ्ग लक्ष्माश्रय भूषणादिभिर्विरोचमानाद्भुत कौतुकं दधौ।१२६

और अपनी दिव्यशक्तिसे चन्द्रमाकी कलाको चारों ओर विखेर दो, वन-पर्वत-आकाश सब उस प्रकाशपुञ्ज से भर गये, तब अपने देहकी धवलकान्ति से भूषण वस्त्रादिलंकार से प्रकासमान अत्यन्त विलक्षण आश्चर्य में मग्नकर देने वाला कौतुकमय विग्रह उन्होंने धारण किया ॥१२६॥

सर्वाङ्ग भूषाभिरलं प्रकुर्वती झङ्कार शब्दानिल सौरभान्विता। तत्राजगामाद्भुत रासमण्डले नारीगणैस्तैः परिरभ्यमाणम् ॥ १२७। मणीन्द्र दिव्याश्चित दीप्तकायं श्रीराजपुत्रं च प्रमुद्वनान्तरे। आकारयित्वा रघुराज सूनुं ह्यु वाच तं चन्द्रकला सुपेशला ॥ १२८॥

सर्वाङ्गसुन्दर वस्त्रालङ्कार से अतिशय शोभा प्रकास करती हुई दिव्य सुगन्धका विस्तार करती हुई-नाना प्रकार के भूषणों का हृदयकर्षक शब्द करती श्रीचन्द्रकलाजी उस रासमण्डल में आईं जहां पर समस्त नारी गणों से आवृत ॥ १२७॥ दिव्यनीलमणि की मृदुल कान्ति के सदृश नय-

नाभिराम शोभाधाम रमणीय दीप्ति सम्पन्न कमनीय कले-वर वाले यही श्रीचक्रवर्तिराजकुमार हैं इस प्रकार निश्चय कर प्रमोदवन के मध्य में अपने समीप बुलाकर श्रीघुराज लाल प्रियतम प्रभु के प्रति कोमल वाणी से श्रीचन्द्र-कला जी अमृतोपम मधुर वाक्य इस प्रकार बोली ॥१२८॥

त्वं सार्वभौमतनयोऽखिलशास्त्रवेत्ता राज-न्यधर्म परिपालन नीतिकर्त्ता । आगत्य चान्य-नगरे सुविहायलज्जां रासं करोसि ललनागण लालिताङ्गः ॥ १२९ ॥

आप सर्वशास्त्र वेत्ता-राजधर्म पालक-नीति विवेक के साथ कार्य करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम चक्रवर्ति राजकुमार ललना गणोंसे लालित (लाडप्यार दुलार युक्त) अंग होते हुए दूसरे राजा के नगर में इस प्रकार ललनागणों के साथ सङ्कोच त्याग कर ललित रासक्रीडा क्यों करते हैं ॥१२९॥

प्रोवाच रामः शृणु मे वचो प्रिये राज्यं मदीयं सकलं शुचिस्मिते । जानामि नो कस्य पुरी मनोहरा विभाति नो दृष्टि पथे मदीये ।१३०

श्रीरामजी बोले हे प्रिये ! यह तो सभी मेरा ही राज्य है, हे मन्दस्मिते ! यह किसकी मनोहर पुरी हमारे नेत्रों के सामने दीख रही है मैं कुछ भी नहीं जानता ॥१३०॥

पश्य प्रियत्वं हि विचार्य भूयन् ! कुत्रास्ति ते सम्प्रति राजधानी । देशः स्वकीयोन तेऽत्र दृश्यते पुरी त्वियं श्रीमिथिलेश्वरस्य ।१३१

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं हे प्रियतम प्रभु ! प्रथम बाह्य दृष्टि से पुनः विचार करके देखिये तो आपकी राजधानी यहां कहां पर है ? आपका देश तो यहां दिखता ही नहीं है, यह तो महाराज मिथिलेश्वर की राजधानी जनकपुर धाम है ॥ १३१ ॥

प्रियां बिना रास रसे निमग्नःकुरुष्वकार्यं सुविचारदक्षः । न त्वं प्रसंसां लभसे कुमार ! नार्यस्त्विमा रूपकला विहीनः ॥१३२॥

श्रीप्रियाजू के बिना आप रासरसमें डूब रहे हैं क्या यह उचित कार्य है, आप तो सद्विचार परायणों में परम चतुर हैं अतएव विवेक पूर्वक कार्य करिये, इन रूप-कलादि गुण विहीन

नारियों के साथ क्रीडा करने से हे राजकुमार ! आपकी प्रसंसा नहीं होगी ॥ १३२ ॥

श्रुत्वा तदा दृष्टिपथेन दृष्ट्वा विचार्य रामो हृदयेन भूरिशः। सुविस्मयं प्राप्य मुहुर्मुहुस्तदा प्रियां च संस्मृत्य मुमोह भूयः ॥१३३॥

राजकुमार श्रीचन्द्रकलाजू की वाणी सुनकर राजनन्दन श्रीरामभद्रजू ने हृदय में खूब विचार किया, वार-वार नयनों से देखकर अनुमान प्रमाणादि से "यह अपना नगर नहीं" ऐसा जानकर महान् आश्चर्य हुआ तथा श्रीप्रियाजू की पुनः अनुराग पूर्ण स्मृति आजाने से अचेत हो गये ॥ १३३ ॥

पपातभूमौ नशसाक साधितुं देहं स्वकं तद्विरहाग्नि तापितम्। दावानलाभा शशिमण्डलोद्भवा पीयूषवृष्टिरिह शङ्कुकणेव तिग्मम् ॥ १३४ ॥ कर्पूर राशिर्दहतीव वह्निवद्वायुर्ववौ पावकवाण वह्निमम्। शरीरमुद्धोद्रुमलं हि तद्रुजा लेभे न शान्तिं स मनोभवार्दितः ॥१३५

आप अपने देह को न सम्हाल सके, विरह अग्नि से

सन्तप्त होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, चन्द्रमाकी शीतल किरणें दावानल की लपटों की भांति दुःखद हो गई, अमृत वृष्टि विषवत् तिव्र मारक हो गई, कर्पूरराशि अग्नि के समान हो गई, वायु मानों देह जला रहा हो वैसा प्रतीत होने लगा, बरफकी हिम शीतल हवा अग्नि बाणके समान दाहक वेदना करने लगी, प्रिया विरह रोग से पीडित आप शरीर का भार धारण करने की शक्ति से भी सिथिल हो गये, मनोभव की पीडा से व्यथित मन किसी प्रकार शान्ति लाभ नहीं पा सकता है ॥१३५॥

उवाच सा चन्द्रकला चलाक्षी शृणुष्वम
मद्वाक्यमिदं सुपथ्यम्। अयुक्तमेतत्तु भवान-
कार्षीत्प्रियां बिना रास विलास सेवनम् ॥१३६

प्राणनाथ की यह दशा देखकर चपलनयना श्रीचन्द्र-कला जी कहने लगी-हे प्रियतमजू! आप मेरा हितकारक सत्य बचन श्रवण करें, श्रीप्राणप्रियाजू को छोड़ कर आप यह जो रासलीला विलास रसका सेवन करते हैं यह कार्य आपका अत्यन्त अयुक्त है, यह कार्य आपने अच्छा नहीं किया ॥१३६॥

श्रुत्वाऽथ सञ्चिन्त्य गुणान्प्रियाया उद्दी-
पनं तत्सकलं समीक्ष्य। धैर्य्यं समालम्ब्य समु-
त्सुक स्तामुवाच रामः परिपूर्णकामः ॥१३७॥

श्रीकिशोरीजी की सर्वश्रेष्ठ प्रिय सखी श्रीचन्द्रकला जी का सुन्दर वाक्य सुनकर धैर्य धारण कर अत्यन्त उल्लासोत्कण्ठा से भरे हुए परिपूर्णकाम प्रभु श्रीरामजी मधुर मञ्जुलवाणी बोले ॥ १३७ ॥

त्वं कासि बाले कुत आगतासि कुत्रास्ति
मे प्राणप्रिया मनोज्ञा। वदस्व सत्यं बचनंमनोज्ञं
विधेहि शान्तिं विरहज्वरस्य ॥१३८॥

हे बाले ! आप कौन हैं ? कहां से आई हो ! हमारी प्राणप्रिया मनकी गति जानने वाली प्रियतमाजू कहां हैं ? आप तो मेरे हृदय की सभी बातें जान गई हो अतएव मेरा विरहज्वर शीघ्र ही शान्त हो जाय वैसा सत्य बचन आप कहिये ॥१३८॥

श्रुत्वाऽथ वाक्यं रघुनन्दनस्य जगाद प्रो-
त्फुल्ल विलोचना तदा। भ्रान्तिः कुतस्तेमनसि
प्रजाता तद्ब्रूहि सत्यं यदिहास्ति संशयः॥१३९

इस प्रकार श्रीरघुनन्दनजू के वचन सुनकर हर्ष से विकसित नयना श्रीचन्द्रकलाजी प्राणनाथ से बोली - हे प्रियतमजू ! आपको यहां किस विषय में क्या संशय हुआ है ? क्या भ्रम आपके मन में उत्पन्न हुआ है ? सत्य सत्य कहें ॥१३९॥

कुत्रास्ति ते राघव राजधानी कुतो भवान्भ्रान्तिपदे निमग्नः । क्व ते दशेयं प्रिय! संप्रजाता स्वास्थ्यं समास्थाय रमस्व चात्र ॥ १४० ॥

हे राघव ! आपकी राजधानी यहां कहां है ? आप इस प्रकार भ्रममें क्यों डूबे हुए हैं ? आपकी ऐसी दशा अकस्मात् क्यों हो गई है ? आप चित्त स्थिर करिये और आनन्द पूर्वक प्रसन्न चित्त से यहां रमण करिये ॥१४०॥

त्वं भ्रान्तचित्तोऽसि प्रमत्तवत्कथं ब्रवीष्यतथ्यं वचनं मनोहरम् । न ह्यस्ति ते चात्र पुरं न काननं न चास्ति सा सागरगा सरिद्वरा॥१४१

आप भ्रमित चित्त होकर मतवाले की भांति ऐसे वचन क्यों बोलते हैं. मनोहर होते हुए भी आपका वचन हितकारक

सत्य प्रतीत नहीं होता है, यहां आपका नगर नहीं है, न आपका वन है और न तो समुद्रगामिनी सरिच्छ्रेष्ठा सरयू नदी है ॥१४१॥

इयं तु सा श्रीमिथिला रसार्णवा साक्षात्स्वयं श्रीमिथिलेशपालिता। प्रसन्नताराधिप तुल्यशान्तिदा विभाति सर्वोत्सव मण्डलैर्युता॥ १४२॥

यह श्रीमिथिलापुरी आनन्द रस सिन्धु है साक्षात् श्रीविदेहमहाराज द्वारा पालित है, प्रफुल्लित पूर्ण शारदीय चन्द्रमा के समान परमाशान्ति देनेवाली तथा समस्त उत्सवों के मनोहर रमणीय मण्डलों से भरपूर है ॥१४२॥

यस्या वियोगेन भवान् प्रमत्तवच्चोद्धीद्यसे संभ्रमतोऽव्यवस्थितः। सा मैथिली तिष्ठति मन्दिरेशुभे त्वदीय संयोग सुखानुभूतये ॥१४३

जिसके वियोग में आप उन्मत्त की भांति हो रहे हैं और सभी आचार व्यवहार अव्यस्थित कर रहे हैं वही श्रीमैथिलीजू यहां अपने मन्दिर में आप के संयोग सुख की अनुभूति करनेके लिये प्रतीक्षा करती हुई विराजती हैं॥१४३

दासीगणास्तेऽत्र समुत्सुकास्त्वयि तिष्ठन्ति त्वन्मार्ग प्रतीक्षमाणाः। सर्वेश्वरी चन्द्रकला सखीनां प्राणप्रियाहं जनकात्मजायाः ॥१४४॥

यही अति सन्निकट आपकी दासियां आपके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम रखने वाली आपके दर्शन की अभिलाषा से प्रतीक्षा करती हुँई खड़ी हैं। श्रीजनकात्मजाजू को अत्यन्त प्राण प्रिय तथा सभी सखियों की ईश्वरी मेरा नाम चन्द्रकला है ॥ १४४ ॥

श्रुत्वा प्रियस्तत्र जगाद हे प्रिये ! यत्नेन तां प्रापय मे प्रियां द्रुतम्। तया विना नैव ममात्र जीवनं करोमि किं येन लभे हि तत्पदम् ॥ १४५ ॥

इस प्रकारके बचन सुनकर श्रीरघुनायकजू श्रीचन्द्रकलाजीके प्रति बोले हे प्रिये ! जिस प्रकार होसके शीघ्र ही प्राण प्रियाजू से आप मुझे मिला दीजिये, अब मेरा जीवन उनके बिना नहीं रह सकता, मैं कौनसा उपाय करूँ जिस के द्वारा उनकी प्राप्ति हो सके ॥१४५॥

उवाच सा तं मद विह्वलाची चन्द्रानना।
चन्द्रकलातदानीम् किं दास्यसे मे वद राजपुत्र!
प्रदर्शयिष्यामि तवप्रियां यदा॥ १४६ ॥

प्रियतम की विरह वेदना युक्त वाणी सुनकर और दोनों युगल प्रभु का परस्पर एक सा ही अनुराग-उत्कण्ठा-विरह-मिलन की तीव्रभावना एक दूसरे की एक के विना जीवन निराशा तथा दोनों के श्रीमुख से "मेरा जीवन आपके ही हाथ में है" इस प्रकार कह-कहकर अपना-अपना प्रतिनिधित्व श्रीचन्द्रकलाजी को समर्पण करना आदि अत्यन्त भाव वर्धक स्नेहाधिक्यपूर्ण व्यवहार देख-देखकर श्रीचन्द्रकलाजू मन ही मन अति प्रसन्न हुई और दोनों प्रिया-प्रियतमजू का मिलन सुख प्रदान करने की यह सेवा सौभाग्य पाने का सुसमय जानकर चन्द्रवदनी-स्नेह मतवाली-श्रीचन्द्रकलाजू प्रेमविह्वल मधुर वचन बोली-हे राजकुमार! कहिये तो मैं आपकी प्राणप्रियाजू से मिलन करादूँ तो आप हमको क्या देंगे ॥१४६॥

पीयूष वद्वाक्यमथो निशम्यचजहास प्रोत्फु-

ल्ल विलोचनो मुदा । जग्राह तत्पाणितलं मनोहरं पुनः पुनः प्राह प्रदर्शय प्रियाम् ।१४७

हास्यविलासपूर्ण आनन्द वर्धक अमृतोपम मधुर वाक्य श्रवणकर प्रसन्नवदन राजीवलोचन श्रीराघवेन्द्र श्रीचन्द्रकला जी का हाथ प्रेमपूर्वक अपने करकमल में लेकर बार-बार स्नेह पूर्ण वचन बोले-हे प्रिये ! आप शीघ्र ही प्राणप्रिया का दर्शन कराइये ।।१४७।।

प्राणान्प्रदास्यामि तव प्रिये हितं किमत्र चित्रं प्रियया समागमे । तथा कुरुष्वात्र यथा च सा प्रिया भवेन्मदीयेऽक्षिपथे तुसाऽधुना ।१४८।

"हे प्रिये ! यदि आप मेरी प्रियतमाजू से समागम करा दीजिये तो मैं आपके कल्याणार्थ प्राण भी देने पड़े तो दे दूँगा, आप अब वही उपाय करिये जिसके द्वारा मैं इस समय प्रियतमाजू का दर्शन कर सकूँ ।।१४८।।

दास्यामि तुभ्यं सकलेप्सितं सुखं प्राणप्रिया सङ्गमने मनोज्ञे । सर्वेश्वरी त्वं सततं प्रियाया साधं लभस्वात्मरसं मनोज्ञया ।।१४९ ।।

प्राणप्रिया का दुर्लभ समागम सुलभ हो जाने पर मैं आपका सभी अभीष्ट पूर्ण करूँगा, आपतो मेरे हृदय की सभी बातें जानती ही हो, आप मेरी प्रियतमाजू के साथ दिव्य सच्चिदानन्द आत्मसुखानुभूति तथा मेरी ललित गुह्य प्रकट दिव्य लीला केलि सनातन दिव्य दम्पति के सभी हास विलास रास रहस्य सुख को प्राप्त करोगी। मेरी प्रियतमाजू की सभी सखी-सहेली–यूथेश्वरियों में आप सर्व प्रधान सर्वोत्तम श्रीसर्वेश्वरी पद प्राप्त करोगी॥ १४९॥

प्रिये चन्द्रकले प्रीत्या पुनरेतद्वदाम्यहम्।
पापी वा सुदुराचारी हीनः सर्वं गुणैरपि। १५०
आचार्यत्वेन त्वां नित्यं यः समाश्रयते पुमान्।
नारीवाऽप्यथवा षण्ढः शृङ्गारं भावमाश्रिताः। १५१
ते मे प्रियतरा नित्यं प्रियायाश्च विशेषतः।
ममाचार्य्या चन्द्रकलेत्येवं नित्यं वदन्ति ये। १५२
एवं ह्यभिमतिर्येषां तेषां किंचिन्नदुर्लभम्।
ममैतां विविधां क्रीडांनानारसमयीं शुभाम्। १५३
गुह्यं केलि रहस्यं मे ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम्।
अनायासेन संप्राप्य मोदन्तेऽन्तःपुरे सदा। १५४

अपने आश्रितों के सुख के बिना अपना सुख महापुरुषों को प्रिय नहीं लगता अतएव आश्रितों के कल्याण में परायण श्रीचन्द्रकलाजी को परम प्रसन्न करने के लिये आप पुनः बोले-हे प्रिये चन्द्रकले! मैं प्रसन्न होकर पुनः कहता हूँ कि आपको आचार्यत्वेन वरण करनेवाले मनुष्य भले पापी हो-दुराचारी हो-सर्वगुण हीन हो ॥१५०॥ नारी-नपुंसक और पुरुष किसी भी चिन्ह-नाम-देहादि युक्त हो परन्तु आप के श्रीचरणों का आश्रय ग्रहण करनेवाले हो शृङ्गार भावसे आपकी परम्परा के दीक्षित हो ॥१५१॥ वे सब मुझे अत्यन्त प्रिय होगें तथा मेरी प्रियतमाजू तो उनका अत्यन्त दुलार करेगी "श्रीचन्द्रकलाजू हमारी परमाचार्या हैं" इस प्रकार जो हृदय में भाव रखते हैं और बोलते हैं ॥१५२॥ उनके मन में आपके प्रति आचार्य निष्ठा अतिदृढ है उनको कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मेरी नानारस मयी परमकल्याणी यह रास लीला का ॥१५३॥ परम गोपनीय रहस्य सुख जो ब्रह्मादिक देवताओं को भी अति दुर्लभ है वह एकान्त आनन्द प्राप्तकर आपके कृपापात्र मेरे अन्तःपुर में प्रसन्नतापूर्वक निवास करेंगे ॥१५४॥

इत्युक्त्वा राघवो दीनो मैथिली विरहातुरः।
न शशाक पुनर्वक्तुं मुमोह भृश दुःखितः॥१५५॥

इस प्रकार बोलते-बोलते श्रीमैथिलीजू के विरह में आतुर प्रभु उनके स्मरण से पुनः अचेत हो गये, कुछ भी न बोल सके॥१५५॥

उवाच तं चन्द्रकला शुचिस्मिता क्षणं क्षणं तस्य दशां विलोक्य सा। धैर्यं समालम्व्य क्षमस्व तत्क्षणं यावत्प्रियां पश्यसि रासमण्डले॥ १५६ ॥

प्रियतमजू की-ऐसी स्थिति देखकर, क्षण-क्षण में बढ़ती हुई विरह वेदना को अनुभवकर प्रभु को प्रसन्न करने के लिये मन्द मुसकानसे युक्त पवित्र वाणी श्रीचन्द्रकलाजी बोली हे प्रियतमजू। आप तबतक धैर्य धारण करें जबतक अपनी प्राण प्रियाजू का रास मण्डल में साक्षात् दर्शन न कर लें, इस साधारण विलम्ब के लिये आप हम को क्षमा प्रदान करें॥१५६॥

तत्ते करिष्यामि प्रियं प्रियां यथा सम्प्राप्य

सानन्द सुखं भवेत्तथा। वियोग सन्ताप निवारण क्षम विलासभावानुविवर्धकं परम् ॥ १५७॥
अहं हि तस्या सुखदा सहाया मुख्या सखी चन्द्रकलेति नाम्नी। इयं मदीयास्ति समस्त माया योगानुयोगै रमिता जगत्त्रये॥ १५८ ॥

हे प्यारेजू ! मैं आपके मनको अति प्रिय वह कार्य अति शीघ्र करने जाती हूँ जिसके द्वारा आपको प्राण प्रियाजू का समागम सुख तुरन्त प्राप्त हो, वियोग का सन्ताप निवारण कर दे तथा भाव विलास लीला का विस्तार करे ॥१५७॥ आप विश्वास रखिये कि मैं यह कार्य अवश्य कर सकूँगी- क्योंकि मैं श्रीजनकराजकिशोरीजू की नित्य सानिध्य में रहकर सुख देने वाली उनकी अति प्रिय सखियोंमें मुख्य चन्द्रकला नाम की सखी हूँ और रासमण्डल समेत आपका आकर्षण कर यहां लाने की यह माया सब मेरी ही लीला है जो बड़े-बड़े योगियों को भी त्रिभुवन में दुर्लभ है अर्थात् यह कार्य त्रिभुवन से पर दिव्यधाम साकेतनायिका श्रीकिशोरीजू की कृपा से उनकी शक्तियां ही कर सकती हैं तथा यह सब उन्हीं सर्वेश्वरीजू का विलास है ॥१५८॥

इत्थं समाश्वास्य जगाम सत्वरं यत्रास्ति सीता विरहान्त रात्मना। प्रकुर्वती राजसुतस्य चिन्तनं क्षणं-क्षणं सद्गुण गौरवाञ्चितैः।१५६

इस प्रकार राजकुमार को आश्वासन देकर जहां श्रीकिशोरीजी क्षण-क्षण में श्रीराघवेन्द्रजू के गुण गणों का स्मरण कर विरह वेदना में अचेत हो रही थी वहां तुरन्त पहुँच गई ॥ १५९ ॥

आज्ञां प्रदेहि मिथिलेश सुते त्विदानीं सम्मानयामि रघुराज सुतं गृहीत्वा। स्नेहात्त्वदीय गुण गौरववाक् प्रवन्धैर्यत्ते रुचिस्तदनुकूल महं करोमि ॥ १६० ॥

श्रीकिशोरीजी से स्नेह पूर्वक श्रीचन्द्रकलाजी ने कहा हे श्रीराजकिशोरीजू ! आप इस समय शीघ्र ही आज्ञा प्रदान करें कि श्रीअवधेशराज कुमारजूको यहां लाकर नाना प्रकार सम्मान करने का सुख हम सब प्राप्त करें, आपके स्नेह बश गुण-गौरव तथा बचन चातुरी द्वारा जिस प्रकार आपको अनुकूल सुख प्राप्त हो वैसा ही मैं करूँगी ॥१६०॥

श्रुत्वात्विदं तद्वचनं प्रियाया उवाच सीता वचनं पुनस्ताम्। हे चन्द्रकान्ते त्वरया हितैषिणी यत्नेन सम्प्रापय चात्र प्रेष्ठम् ॥१६१॥

ऐसा प्रियबचन सुनकर श्रीराजकुमारीजी पुनः श्रीचन्द्रकलाजी से कहने लगी, हे चन्द्रकान्ते ! आप तो स्वयं परम चतुर और मेरा हित चाहनेवाली हो जाइये शीघ्र ही हमारे प्राणनाथ को ले आइये ॥१६१॥

पुनः समागत्य सुमित्रभावतः प्रदेहि मह्यं यदभीप्सितं मम। यथा प्रियामेऽस्तु सदैव सम्यता तथाभवत्त्वं रतिवर्धिनी सदा ॥ १६२ ॥

पुनः प्रियतम के पास जाकर "सर्वेश्वरीजू ने कहा है प्राणनाथ ! आपका कार्य सिद्ध हो गया अब आप मेरा जो मनोरथ है वह पूर्ण करिये, चलिये श्रीप्रियाजू के साथ रास रहस्य का सुख प्रदान करें। यह सुनकर प्रभु बोले हे प्रिये ! मेरी प्रियतमाजू जिस प्रकार सदा सर्वदा मेरे ही अनुकूल रहें वैसी परस्पर प्रेम बढ़ानेवाली क्रिया आप करें ॥१६२॥

करं गृहीत्वा कर कुडमलेन सा जगाम

सीतां प्रति मन्दहासिनी । निरीक्ष्य साह्लाद युतः प्रियां निजां चचाल रामस्त्वरयाति विह्वलाम् ॥ १६३ ॥

प्राणनाथ का कर कमल धर कर मन्द-मन्द हँसती हुई श्रीचन्द्रकलाजी प्रियाजू के पास चली, दूरसे ही प्रेम विह्वला अपनी प्रियाजू को देखकर श्रीराजकिशोरजू प्रेम विकारों के वशीभूत हो गये, और वेग से चले शरीर में कम्प रोमाञ्चादि सात्विक भाव एकाएक प्रगट हो गये ॥१६३॥

त्यक्त्वासना वेगवती मनस्विनी निवेश्य चाङ्के हि प्रविष्ट विष्टरे। चुचुम्ब चालिङ्गय परस्परस्तदा तृप्तिं न यातं हृदयं तयोस्तु तत् ॥ १६४ ॥

प्राणनाथ को अपने समीप आते देखकर सदैव मनको स्ववश रखने वाली प्रियाजू आसन त्यागकर वेग से मिलने के लिये आगे चली, प्राणनाथ ने सन्मुख आती हुई अपनी प्राणप्रिया को ललक कर हृदय से लगाकर आलिङ्गन किया। परस्पर दोनों दम्पति आलिङ्गन-चुम्बनादि द्वारा परम सुख पाते

हैं परन्तु किसी का हृदय नहीं अघाता। एक दूसरे का सुन्दर बदन निहार-निहार कर आनन्द मग्न होते हुए सिंहासन पर विराजमान हो गये ॥१६४॥

सखीजनास्तावदशेष सङ्गताः प्रारेभिरे पूजनमत्र तद्द्वयोः। काचित्तदा वासितपुष्प कुडमलैः स्नेहैश्शेषैर्विविधैर्विलेपनैः। संस्नाप्य सौगन्धजलैश्चचन्दनैः काश्मीर कपूर सकुङ्कुमादिभिः ॥१६५॥

तबतक सभी सखीजन दोनों युगल स्वरूप की एकत्र पूजा करने का अपूर्व अवसर जानकर अति प्रेमसे पूजन करने लगी। कोई अत्यन्त स्नेह से सुवासित पुष्प कलियों द्वारा-कोई सुगन्धित तैल-उबटन फुलेल इत्र द्वारा, कोई सुन्दर सुगन्धित जल द्वारा- कोई अनेकों चन्दनादि लेप द्वारा, कोई कर्पूर-कंकुमादि द्वारा ॥१६५॥

कस्तूरिका चर्चित कोमलानि वस्त्राणि चित्राणि च भूषणानि। सन्धार्य सम्यक् रघुराज सूनोर्मोहं व्यपेयुर्जनकात्मजायाः १६६ ॥

कस्तूरी द्वारा सुवासित चित्र बिचित्र रङ्ग बिरङ्गी वस्त्र भूषणादि भली-भांति श्रीरघुराजकुमार तथा श्रीजनककुमारी-जी को धारण करायें, उन वस्त्रालङ्कारोंसे अलंकृत युगल प्रभुको परस्पर देख देखकर सखियों ने मोह को प्राप्त हो रही हैं।१६६॥

भोज्यानि नानाविधि कल्पितानि पक्वानि चान्नानि फलानि भूरिशः। रसानि शुद्धासव पेयजानि निवेदयामासुरिह प्रयत्नतः ॥१६७।

नाना प्रकार की चतुराई से बनाये हुए विविध भोजन, पक्वान मिठाई, व्यञ्जन-सिद्धान्न (कच्चीरसोई) फल-रस शुद्ध आसवादि पवित्र औषध-पाचकादि समेत प्रभुको अर्पण किये ॥१६७॥

नीराजनं चक्रुरनेकशो मुदा हुताशनं राजिकया सुतर्पितम्। पुष्पाञ्जलिं पुष्पसुवर्ण-राजतैः प्रचक्रुरुच्चैः प्रमदानुमोदिताः ॥१६८।

धूप-दीप-आरती करके अनेकों वार राई-लवण घुमाकर कुदृष्टि-दोष का निवारण करने के लिये अग्नि में छोड़ती हैं, नाना प्रकार से प्रसंसनीय सुरद्रुमपुष्पों के साथ मणिकञ्चन-

रचित बहुमूल्य रत्न पुष्पों की पुष्पाञ्जलि अर्पण करती है, सभी प्रमदायें अत्यन्त हर्षित होकर प्रियाजूको संकेतिक भाव से अनुमोदित इन लीलाओं का सुख लेती हैं ॥१६८॥

ततस्तु ताश्चामर छत्रशोभनै रवीन्दु बिम्ब-प्रतिमैश्च दर्पणैः । प्रदर्श्य संवीज्य च चारुवी-क्षणै विरोचमाना वनिता मनोहराः ॥ १६९।

तत्पश्चात् अति सुन्दर छत्र चवँर तथा व्यजनादि द्वारा सेवाकर सूर्य-चन्द्र के समान स्वच्छ दर्पण अपनी अपनी शोभा निहारने के लिये श्रीप्रिया प्रियतम को अर्पण करती हुई प्रेम कटाक्ष दृष्टिसे सुभग चितवन करती हैं उस समय बनिताऐं और भी-कान्तिवाली एवं अधिक मनोहर लगती हैं, उनका मुखमण्डल अद्वितीय भाव--भङ्गी--शोभा प्रभा सम्पन्न हो जाता है ॥१६९॥

अथो तदा ताण्डव नृत्य हेतवे सङ्गीत शास्त्रोक्त विधान पेशलाः। प्रतेनिरे केलिकलाप सिद्धये सूत्राणि माण्डल्यकृतानि शोभनाः।१७०

पुनः ताण्डवादि नृत्य तथा केलिकलाप का सुविस्तार एवं सुख प्राप्त करने के लिये सङ्गीतशास्त्र बिधान विशारद

अति शोभना उन ललनाओं ने अपने-अपने मण्डल-यूथ बनाये ॥१७०॥

सुवेदिका विस्तृत कच्छजानि स्थले-स्थले काञ्चन निर्मितानि। मनोज संवर्धित प्रोद्धतानि चित्राणि कामानल दीपकानि ॥१७१॥ सिंहासनं मध्यगतं मनोहरं मुक्ता प्रवालाञ्चित मंजुलोज्वलम्। सहस्रचन्द्रार्क निभं सुसुन्दरं विराजमानं गगनोपमं भुवि ॥ १७२ ॥

सुन्दर वेदिकायें-कञ्चनरचित कक्षायें तथा जहां-तहां (यत्र-तत्र) कामानलको प्रदीप्त करनेवाले मनोज वर्धक उद्धत कोक शास्त्रके चित्र उस मण्डप में शोभा देने लगे ॥१७१॥ मुक्ता प्रवाल-रत्न तथा स्वर्ण रचित सुन्दर सिंहासन मध्यमें पृथिवी पर रहते हुए भी-हजारों सूर्य-चन्द्रकी कान्ति के समान आकाशकी भांति ऊँचा मनोहर प्रकाशमान शोभा दे रहा है ॥१७२॥

तत्राङ्गना वेषधराः समुत्सुकाः ब्रह्मादयश्चारण यक्ष किन्नराः। वाद्यानि नीत्वाऽथ विविक्त चित्ताश्चेरुर्महामोदमदे प्रसक्ताः।१७३

उस स्थल में ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्रादि देवगण-यक्ष-किन्नर-गन्धर्व चारण स्त्रियों का वेष बनाकर वाद्य-गान करते हुए बहुविध बाजा साथ में लेकर आये संसार का मोह त्यागकर वीतराग बने हुए महर्षिगण भी उस महामोद प्रद आनन्द रस का मद पीकर मतवाले बन गये ॥१७३॥

मध्ये सभाया जनकात्मजायुतो रराज रामो रमणोत्सुकस्तदा । श्रीचारुशीलादि भिरन्विता मुदा वीणाधरा चन्द्रकला कलान्विता ॥१७४॥ उद्गायती कापि ननर्त प्रोन्नता भुवं समाश्लिष्य कलां वितन्वती । अथोच्छलन्ती गतितालतन्तुभिस्ततानतत्ताण्डव नृत्यकल्पनैः ॥१७५॥

सभाके मध्यमें श्रीजनकराज किशोरीजी के साथ श्री-अवधेश राजकुमार रमण करने की उत्कण्ठा से विराजे हुए हैं, श्रीचारुशीलाजू आदि सखियों को साथ लेकर कला कुशलता प्रवीण वीणाधरा श्रीचन्द्रकलाजी ने ताण्डवनृत्य का उद्घाटन तथा विस्तार किया॥१७४॥उस समय कोई सखी गाती है, कोई अपने यूथको लेकर ऐंठती हुई मधुर नृत्य करती

है तो कोई पृथिवी को आलिङ्गन करती हुई मानों कला का बिखेरती हो ऐसा लगता है, कोई उछलती चलती है तो कोई कोई गति-ताल-मूर्च्छना-कम्प-स्वर ग्रामादि भेद-प्रभेद समझती समझाती अपूर्व सङ्गीत सुधा रस बरसाती है ॥१७५॥

काचित्तु सङ्गीतकला विलक्षणा वितन्वती वीणरवेन भावतः। प्रनृत्यती जानुबलेन मण्डले प्रकुर्वती यौवन दर्पदर्पिता ॥१७६॥

कोई सखी सङ्गीत कला में अत्यन्त चतुर वीणाका स्वर अपने स्वर में मिलाती हुई, जानु बल से नृत्य करती है, यौवनदर्प से दर्पित अपना सम्पूर्ण भाव-कटाक्षों द्वारा बिखेरती हुई उस रासमण्डलमें आनन्द बितरण करती है॥१७६॥

विहारशीला त्वपरा परांचलं प्रगृह्य पाणिं परिपश्यती मुखम् । प्रचुम्बती प्रोन्नत कुम्भवत्कुचा बभ्रामयन्ती चिबुकं गृहीत्वा ॥१७७॥

दूसरी कोई सखी किसीका आञ्चल पकड़कर उसका मुख देखती हुई-ठोड़ी पकड़कर चुम्बन करती है तथा कनक कलश समान उठे हुए सुन्दर उरोजोंवाली हाथ पकड़कर

प्रेमावेश में बड़े वेगसे नृत्य करती गोल मण्डलाकार घूमती है तथा साथ वाली सखी को घूमाती है ॥१७७॥

प्रगृह्य वीणां रघुराज सूनुर्यद्वल्लकीतां महती सभायाम्। जग्राह सीता तु तदैव शारदीं वीणां मनोज्ञां सुनितम्बिनीनाम् ॥१७८॥

श्रीरघुवंश कुमारजू वल्लकी नामकी बड़ी सुन्दर वीणा लेकर महतीसभा रास मण्डल में आये, श्रीकिशोरीजी ने भी शारदी नामकी बीणा जो सुन्दर पृथुल नितम्बवाली मनोहर ललनाओं को अति प्रिय है वह ग्रहण की ॥१७८॥

सा तौम्बरीं चन्द्रकला मृगाक्षी प्रगृह्य पाणौ च ननर्त हर्षिता। मृदङ्ग पर्णेन समाहता गतिं प्रदर्शयन्ती नटनाट्य संगताम् ॥१७६॥

मृगनयनी श्रीचन्द्रकलाजी नटनाटयके अनुकूल सुन्दर शास्त्र विधि युक्त गति-तान-राग तथा नृत्य के भेद-उपभेद दिखाती हुई मृदङ्ग के साथ अपनी तौम्बरी वीणा का स्वर मिलाकर हर्षित होकर नृत्य करने लगीं ॥१७६॥

रामस्तदा श्रीजनकात्मजा युतः कलासु-विज्ञः कलया कलस्वनम्। प्रनृत्य भेदान् प्रण-येन कल्पयँस्तडिद्गणे मेघ इवाम्बरस्थः ।१८०।

तत्र श्रीजनकात्मजाजी के सहित कलाओं में सुविज्ञ अपनी निज कला और मधुर स्वर से नाना प्रकारके नृत्य के भेदों को कल्पना द्वारा प्रकट कर जिस प्रकार मेघ बिजली के साथ आकाश में शोभा देता है उस प्रकार क्रीडा करते हुए सुशोभित हुए ॥१८०॥

शिखी व नृत्यन् गज हंसयोर्गतिं पारावत व्रात गतीश्च दर्शयन्। क्रीडत्यसौ श्रीवनितौघ मण्डितः प्रहर्षवेगानुगतः कलानिधिः।१८१

कभी मयूर–कभी हंस कभी-हस्ति-कभी पारावत कभी चक्रवाक-कभी अन्य कोई मनोरम गति दिखा-दिखाकर कला-निधि प्रियतम आनन्द में मस्त होकर उस वनिता मण्डल से शोभित मध्य में क्रीडा करने लगे ॥१८१॥

सम्मूर्च्छना कलित कोमल मंजुलाना मारोहिता समवरोहि समन्वितानाम् द्वावि-

शद्‌ध्नपरिकल्पित शब्दजानां सारेगमादि सम सप्तक संयुतानाम्॥१८२॥ वीणामृदङ्ग मुरली करतालिकानां सूत्रानुसूत्रपरिवर्धित तालिकानाम्। काल प्रमाण कलित ब्रत तन्त्रिकाणां क्वाणः समस्त भुवने प्रथितोभूव ॥ १८३ ॥

कोमल मधुर मञ्जुल मूर्च्छनायें, आरोह-अवरोहादि स्वर गान कलायें तथा सारेगमादि स्वरसप्त शब्दजाल के सङ्गीतशास्त्र प्रणीत द्वाविंशत् (बाइस मार्गों) के विविध भेदों से युक्त ॥ १८२ ॥ वीणा-मृदङ्ग-मुरली-झांझ-मञ्जीरादि बाजाओं के राग सूत्रानुसूत्ररूप से एक दूसरे के स्वर में गुंथे हुए समयानुसार रागतन्त्र के सिद्धान्तानुकूल प्रकट होकर समस्त भुवन में अपने स्वर से व्याप्त हो गये ॥१८३॥

प्रनृत्यमान कामिनी गणे तदा मुदा करे।
करै गृहीतया तया ननर्त नाट्य सागरः।
प्रवीण चारु नागरी नवीन मण्डले मुहुः।
प्रमोद कानने यथा तथा प्रियोत्तमावृत्तः।१८४

उस समय आनन्द के समुद्र में निमग्न नवीन रास

मण्डल में अतिशय नृत्य करती हुई कामिनी गणों के मध्य में कर से कर ग्रहन किए उत्तम २ प्रियाओं से आवृत (घेरे) हुए प्रवीन चारु नागरी श्रीप्रियाजी नाटय समुद्र श्रीप्रीतमजू जैसे प्रमोदवन में नृत्य करते थे तैसे जनकेन्द्र नगर रमनीक विहार स्थलों में नृत्य करते हैं ॥१८४॥

कटाक्षपात हस्त पाद नेत्र हाव भावकैः ।
सुरङ्गरञ्जिताक्ष पक्ष्मपंक्तिलक्ष्य दर्शनैः ।
विलोल भाव लोचनैर्लसल्ललाट पट्टिका ।
प्रवेणिका स्फुरल्ललल्ललाम नाट्य नागरः॥१८५

नेत्रों के कटाक्षपात हाथ-पांव-औंहादि के हाव-भावपूर्ण सङ्केत व्यङ्ग-प्रेमरङ्ग रञ्जित नयन-अपने पक्षकी पंक्तियोंका लक्ष्यका बोध-कराते भाव भरे-चञ्चल नेत्रों से अलंकृत-पांती पाडे हुए घुंघरारे सुचिक्कन चमकीले केशों से लसित ललाम ललाट-और वेणी से ललित शोभामय बना सखियों का भाल प्रदेश आदि युक्त नायिकाओं के मध्य में नट-नागर राघवेन्द्र अतिशय शोभायमान हो रहे हैं ॥१८५॥

प्रवर्धमानरम्यता सखीसमाज मध्यगे तडिल्ललाम मराडले रघूत्तमो नटेश्वरः। प्रिया करा-

ञ्चितो गले प्रदर्शयन्रसोज्वलम् रसानुभाव भावतः समेधमान मानसः ॥ १८६ ॥ अखण्ड रासमण्डले सखीसमूह कल्पिते रराज राजनन्दनो विमोहयन् जगत्त्रयम् । प्रकाम कामकामुको मनोज मन्त्र भाविता रणन्सुव-ल्लकीं भृशं सुधा सुधारया तदा ॥ १८७ ॥

उस समय सखियां समूह से कल्पित (रचित) अखण्ड रास मण्डल में जैसे सुन्दर बिजलियों के मण्डल में नील मेघ सुशोभित हो वैसे सखियोंके समाज मण्डलमें श्रीप्रियाजी के कर कमल से पूजित (स्थापित गले आनन्द रस से मानस (हृदय) बढ़े (भरे) हुए रसानुभाव भाव से शृङ्गार रस रूप को दर्शाते हुए कामदेव के भा काम प्राविर्भाव करने वाले कामुक नटेश्वर रघुत्तम मनोज मंत्रसे मंत्रित वल्ल की नामक वीणा को अतिशय बजाया उसकी अमृतमय वाणी धारा प्रवाह से जगत्त्रय को प्लावित (डुबाते) विमोहित करते राजनन्दन रराज (सुशोभित हो रहे हैं) ॥१८६-१८७॥

क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे क्वचित्क्वचिल्लतान्तरे क्वचित्क्वचित्कुचान्तरे प्रविश्य राजनन्दनः ।

प्रदीपयन्मनोभवं प्रदर्शयन्स्वलाघवं कला कुतूहलं मुहुः प्रकाम काम शास्त्रजम् ॥ १८८ ॥

कभी-कभी सघन वनमें, कभी-कभी सघन लता कुञ्जों में तो कभी-कभी पृथुलस्थनी कामिनीयों के स्थन मण्डल के बीच में पैठकर कामुक राजनन्दन रघुनायक बड़ी चपलता से निकल जाते हैं, अपनी लाघव-स्फूर्ति दिखाते हुए मनोभव को प्रदीप्त करने वाला कामशास्त्र कथित कला कौतुक बार-बार नाना प्रकार से करते हैं॥१८८॥

मयूर कोकिलाक्वणैःकपोत कीर काकलीक्वणैः सुरासमण्डले स्वकीय वेष सम्पदा। विमोहयन्सखीगणान्ननेकरूपसौभगैः---महावनेषु पक्षिवन्नदन्ननेक भाषया॥ १८६ ॥

कभी-मयूर-कभी कोकिला कभी कीर कपोत-पपीहादिकों के समान सुन्दर स्वर निनाद करते हैं, रासमण्डलमें अपनी स्वरूप सम्पति से सखिगणों को अनेक रूप माधुरीसे मोहित कर महावन में जैसे मयूर मत्तनृत्य क्रीडा करे वैसे क्रीडा करते हैं।।१८९॥

कृत्वा महारास महोत्सवं तदा वितत्यमायां भुवने विमोहिनीम् । ब्रह्मादि देवासुर मोहिता-स्तया जडीकृता पावक पाथसादयः ॥१६०॥

इस प्रकार महारास महोत्सव करके भुवन मोहिनी माया का विस्तार करके उस क्रीडा के वशीभूत ब्रह्मादि देवता को भी मोहित कर दिये तथा अग्नि-जल-पवन को जड़ीभूत बना दिये ॥१६०॥

गावो मृगास्ते पशवश्च सर्वे मनुष्य गन्ध-र्वसुरासुराश्च । न लेभिरे चेतसि चेतनां क्वचि द्विकृष्यमाणा मनसा मदान्धाः ॥१६१॥

गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य-गन्धर्व-देव-असुरादिक सभी कोई अपने आप में न रहे अचेत हो गये,इस मद में मदान्ध वे लोग अपने मनको खींचकर पुनः अपने वश में करने को असमर्थ हो गये, उनका हृदय इस महारास ने अपनी ओर खींच लिया ॥१६१॥

इत्थं निवृत्तं रस रासजं चिरं सुखं महन्मा-

नव भाव दुर्लभम्। समाप्य सम्यक् जनकात्म-
जासमंसर्वेश्वरी चन्द्रकलाभिधानया ॥ १६२ ॥

इस प्रकार महारास रसका सुख जो मलिन बुद्धि मानवोंको अत्यन्त दुर्लभ है वह शुद्ध सात्त्विक माया गुणातीत-निर्विकार-अनुभवगम्य दिव्यभाववाले विशुद्धात्माओं के भोग्य रासरस बहुत काल पर्यन्त भोगकर सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजा के साथ श्रीजनकात्माजाजी सम्यक् प्रकारेण पूर्ण हो समाप्त किया।१९२

पुनश्चतान्स्वाष्ट सखीगणान् मुदा चाज्ञा-
पयामास शुचिस्मितानना। यूयं स्वयध्वमत्ता
रघुराजधानीमादाय सर्वविभवां सहरासभूमिम्
॥ १६३ ॥ यथा पुरस्तादुपगृह्य चागता जला-
वनान्तां पशुपक्षिभिर्वृताम्। तथा समारोपय
तत्र तत्र सा यथा स्थितां सत्वर योग विद्यया १६४

तत्पश्चात् अपनी प्रिय अष्ट सखियों के बुलाकर श्री-चन्द्रकलाजी ने प्रेम पूर्वक हँसते हुए कहा आप समस्त वैभव सम्पन्न रासभूमि समेत यह प्रमोदवन स्वयम् ले जाकर जैसे जहां से पहले लाया था उसी प्रकार पुनः स्थापित कर

आइये, पशु-पक्षी-लता वितान-नदी जलाशय सभी-यथावत् अपनी योग विद्या के बल से पुनः रख आइये ॥१९३-१९४॥

यथा हि कस्यापि न सम्भ्रमो भवेद्रासावनौ तत्र तथा विधाय। मनः समाधाय प्रियान्तिके मुदाह्युपेत्य मां दर्शय नैज कौतुकम् ॥१९५॥

जिस प्रकार किसी को किसी प्रकार का भ्रम न हो उस प्रकार रासस्थली को स्थापित करके, मनको भली-भांति स्थिर करके समाधान चित्त से विचार लेना और किसी को कुछ पता न लगने पावे, अपने इस अपूर्व कौतुक को दिखा कर प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र ही श्रीप्रियाजूके पासचले आना१९५

श्रुत्वा तु वाक्यं हि प्रभासुतायाः संगृह्य-भूमिं सह वैभवां तदा। गत्वा तु ताःश्रीरघुराजधानी मारोप्य सर्वं पुनरागताश्च ॥ १९६ ॥

श्रीचन्द्रप्रभाकुमारी की वाणी सुनकर वह अष्ट योगिनी समस्त वैभव सम्पन्ना उस रासस्थली को लेकर श्रीअयोध्या जी में जहां से लाई थी वहीं पर सावधानी से यथावत् स्थापित कर पुनः जनकपुर आ गई ॥१९६॥

इत्थं तु सर्वं मिथिला प्रदेशे सम्पाद्य रामेण सहाशु जानकी। विसृज्य सर्वं पुनरेत्ययोध्या-मग्रयं चरित्रं च वदाम्यहं पुनः ॥१९७॥

इस प्रकार मिथिला प्रदेश में श्रीरामजी के साथ श्रीजानकीजी सुन्दर रास विलासादि चरित्र करके समस्त प्रेमीजनों को सम्पादन किया पुनः श्रीअयोध्याजी जाकर अन्य मनोहर लीला श्रीचन्द्रकलाजी ने जैसे जैसे की हैं वह अग्रिम चरित्र मैं फिर आगे कहूँगा ॥१९७॥

एवं महारास रसं प्रवृत्तं विदेह पुर्यां किल गुप्त भावैः। श्रीजानकी चन्द्रकला प्रभावजं सर्वै रगम्यं श्रुतिसारभूतम् ॥ १९८ ॥

इस प्रकार श्रीजनकपुरधाम में गुप्तभाव से श्रीजानकीजी और उनकी प्रियतम सखी श्रीचन्द्रकलाजू के प्रभाव से सर्वसाधारण के लिये अत्यन्त दुर्लभ श्रुतिसार स्वरूप महारास रस सुख का वरसा हुआ ॥१९८॥

सिद्धपीठे सुकल्पे श्रुतिगणमहिते ब्रह्मविष्णवादि सेव्ये-शुद्ध ब्रह्मावभासे प्रकटित विभवे

कोटि भास्वत्प्रकाशे। आधारे लोकवृत्तेःप्रकटित भुवने भावनागम्यरूपे–साकेतस्यापि पूर्वे रमयतु नितरां मे मनो मोदतेव ॥ १९९ ॥

सिद्धपीठ-श्रुतिगणों द्वारा महिम कीर्तियशप्राप्त-ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि देव सेवित-शुद्ध ब्रह्मतेज पूर्ण प्रकाशित-कोटि सूर्यवत् स्वयं प्रकाशमहान् वैभवोंको प्रकट करनेवाली-समस्त लोकों की आधार-भावनागम्या-श्रीअवधपुर से पूर्वदिशा में स्थित अनन्त ब्रह्माण्ड की जननी-श्रीमिथिलाभूमि जनकपुर धाममें मेरा मन आनन्द पूर्वक मुदित होकर रमण करे ॥१९९

इत्थं चन्द्रकलायाश्च चरित्रं परमाद्भुतम्। ये शृण्वन्ति पठिष्यन्ति भक्तिर्भवति निश्चला ॥२००॥ इदं देवि महा गोप्यं रहस्यं भावनास्पदम्। नास्तिकाय न दातव्यं चान्यथा निरये व्रजेत्॥ २०१ ॥

इति श्रीमल्लोमश संहितायां रासरहस्य वर्णनं विंशत्तमोऽध्यायः ॥२०॥

यह सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू का अद्भुत चरित्र जो कोइ सुनेगा तथा पाठ करेगा उसको श्रीयुगल प्रभुके चरण कमलों में अविचल भक्ति होगी ॥२००॥ हे देवि पार्वति! यह परम गोपनीयं भावनागम्य श्रीरामरहस्यका रसमय वर्णन भावहीन श्रद्धा शून्य नास्तिक लोगों को कभी नहीं देना चाहिये नहीं तो अनधिकारी को दान देने के पाप से नरक में जाना पड़ेगा ॥२०१॥

इति श्रीअवधकिशोरदास श्रीवैष्णव प्रेमनिधि प्रणीतायां सन्तप्रिया व्याख्यायां श्रीमल्लोमश संहितायां विंशत्तमोऽध्यायः ॥२०॥

॥ श्रीसर्वेश्वरी-विजयते ॥

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया' व्याख्या समन्विता

श्रीमल्लोमश-संहिता

एकविंशोऽध्यायः

श्रीशिव-उवाच

इत्थं चन्द्रकलायाश्च चरित्रं परमाद्भुतम् ।
बाललीला प्रसङ्गेन कथितं ते च सुव्रते ॥ १ ॥
विवाहानन्तरं देवि साकेते रासमण्डले ।
नारदश्चन्द्रकलया वीणा वाद्यमशिक्षयत् ॥२॥

यह श्रीचन्द्रकलाजीका अपूर्व चरित्र श्रीकिशोरीजीकी बाल लीला के प्रसङ्ग के साथ वर्णन करके तुमको सुनाया ॥१॥ श्रीसीतारामजी के विवाह के पश्चात् श्रीअयोध्याजी के रास मण्डल में श्रीचन्द्रकला जी से श्रीनारद ऋषि ने वीणा बजाने की कला शिक्षा प्राप्त की ॥२॥

श्रीपार्वत्युवाच–

इदममृत समानं चित्ररूपं चरित्रं तवमुख-

शशि बिम्बादुद्भवं वेदसारम्। जनक नृपति जायाश्चन्द्रभानोः सुताया निखिल दुरित ताप ध्वंसकं ज्ञानगम्यम् ॥ ३ ॥

यह अमृत के समान परम पवित्र चरित्र आपके मुखचन्द्र द्वारा झरती हुई सुधा धारा का पान किया, वे वेदान्त का सार तत्त्व-समस्त पाप ताप विनाशक ज्ञान विज्ञान गम्य श्रीजनकराजकुमारी तथा श्रीचन्द्रभानु कुमारी कान चरित्र सुना ॥३॥

पुनर्वद ममस्वामिन् रहस्यं परमाद्भुतम्।
सम्यक् चन्द्रकलायाश्च कलाकेलि समुद्भवम् ।४।
कदाश्रीनारदो योगी ब्रह्मपुत्रो मुनीश्वरः।
सर्व वेदार्थ तत्त्वज्ञो भक्तानां च शिरोमणिः॥५।
कस्माच्चन्द्रकलायास्तु वीणावाद्याय चागतः।
शिक्षामाप महादेव सर्वं कथय विस्तरात् ॥ ६ ॥

हे स्वामिन्! आप अद्भुत परम रहस्य श्रीचन्द्रकला केलि समुद्भव पावन चरित्र पुनः विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ॥४॥ देवर्षि नारद परमयोगी-ब्रह्मपुत्र-मुनीश्वर-सर्वशास्त्र·

तत्वज्ञ-भक्तजनों के अग्रगण्य किस लिये चन्द्रकलाजी के पास वीणा बजाने की विद्या सीखने के लिये गये और हे देव देव महादेव! उन्होंने कैसे शिक्षा प्राप्त की वह सब कथा विस्तार पूर्वक श्रवण कराने की कृपा करें ॥ ५-६ ॥

सीता मुख्या सखी सा तु कथं दृष्टि पथं गता।
शिक्षाकालं कथं प्राप्ता राम रास महोत्सवात् ।७
कस्माच्चन्द्रकला शिष्यो वीणावाद्ये बभूव ह।
सर्व वन्द्यो मुनिश्रेष्ठो गुरुणां परमो गुरुः ॥८।
एतन्मे संशयं छिन्धि प्रीतिर्यद्यस्ति ते मयि।
रसिकानां मनोत्साह कारिणीकथ्यतां कथा ।९

श्रीकिशोरीजी की मुख्य सखी सदा रास महोत्सव में मग्न रहनेवाली श्रीचन्द्रकलाजी से देवर्षिजी को साक्षात्कार कैसे हुआ? तथा श्रीनारदजी को शिक्षा प्रदान करने का उन को अवसर कैसे प्राप्त हुआ? और हे देव! सर्ववन्द्य-मुनि श्रेष्ठ-भक्त शिरोमणि-गुरुओं के परम गुरु नारद मुनि ने वीणा विद्या ग्रहण करने के लिये चन्द्रकलाजी का शिष्यत्व क्यों स्वीकार किया यह महान् संशय मेरे मनमेंहै, यदि

आप को इस दासी पर आन्तरिक प्रेम हो तो रसिकों को मन हरण करनेवाली यह सुन्दर कथा सुनाकर आप शंका का निवारण कर दीजिये ॥ ७-८-९ ॥

श्रीशिव-उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गोप्याद्गोप्यतमं दिव्यं चरित्रं रसवर्धनम् ।१०

हे देवि ! परम अद्भुत गोपनीय से भी गोपनीय दिव्य रस वर्धक पावन चरित्र वर्णन करता हूँ तुम सावधानतापूर्वक प्रेम से श्रवण करो ॥१०॥

एकास्मिन् समये देवि ब्रह्मलोके महत्तरा ।
सभा प्रादुरभूत्तत्र देवासुर समुद्भवा ॥ ११ ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः किन्नराः पन्नगापगाः ।
गङ्गाद्या मुनयः सिद्धाश्चारणाः समुपागताः ।१२

हे देवि ! एक बार ब्रह्मलोक में बड़ी भारी सभा हुई, वहां देव-दानव-गन्धर्व--अप्सर-यक्ष-किन्नर-पन्नग-जलचर गङ्गादिक तीर्थ-सिद्ध-चारणादि सभी एकत्र होकरआये ११-१२

तत्र देवर्षिवर्यस्तु वीणापाणिर्मुनीश्वरः ।
नारदोऽपि समायातो ब्रह्मपुत्रोऽति हर्षितः॥१३॥
पुनः पुनः रणन्वीणां गायन्भगवतो यशः ।
दर्पयुक्तो न मत्तोऽस्ति गायको वाद्यकोऽपरः॥१४

उस सभा में वीणा पाणि-मुनीश्वर-ब्रह्मपुत्र नारदजी भी आनन्द पूर्वक हँसते हुए आये, भगवान् का यश गाते हुए बार-बार बीणाको बजाते थे, मनमें मेरे समान गायक अथवा बाजा बजानेवाला और कोई नहीं है इस प्रकारके दर्प से युक्त थे ॥१३-१४॥

त्रिषुलोकेषु विख्यातो गान्धर्ववेद वित्तमः ।
अहं देवासुराचार्य्यः सर्ववन्द्यपदाम्बुजः ॥१५॥
गान्धर्व वित्तमाः सर्वे यत्र गायन्ति प्रोत्सुकाः ।
स्वान्स्वान् वाद्यान्समालम्ब्य गायन्ध्यायन्परं प्रभुम् ॥ १६ ॥

तीनलोक में विख्यात-गन्धर्व वेद बिशारद-देवासुरगणों के आचार्य-सर्ववन्द्य पदाम्बुज मैं हूँ ॥१५॥ गान्धर्व वेद बिशारद सभी जहां पर आनन्द पूर्वक अपने बाजाओं के

स्वरका आश्रय लेकर प्रभुका ध्यान धरते हुए उल्लास के साथ गाते थे ॥१६॥

चतुर्मुखो महातेजाः सर्वलोक पितामहः ।
सिंहासने समासीनः सर्वलोकनमस्कृतः ॥१७॥
अहं नारायणो देवो गुप्त भावेन सङ्गतः ।
श्रोतुं रामायणं काव्यं ब्रह्मणा निर्मितं च यत् ॥१८
नानाराग प्रबन्धेन गायन्ति मुनिसत्तमाः ।
नानातत्त्व विधानेन वेदवेन्दान्त पारगाः ॥१९॥

महातेजस्वी-सर्वलोक पितामह-सर्वलोक नमस्कृत चतुर्मुख ब्रह्माजी सिंहासन पर विराजे थे ॥१७॥ हे पार्वति ! उस सभा में भगवान् नारायण और मैं भी गुप्त भाव से ब्रह्माजी द्वारा निर्मित श्रीरामायण काव्य का गान सुननेके लिये आये थे ॥१८॥ श्रेष्ठ-सन्त मुनि नाना राग प्रबन्ध बाँधकर वेद वेदान्त तत्त्वज्ञ-प्रभुके स्वरूप का-गुण का-लीलाओं का नाना भांति से गायन गा रहे थे ॥१९॥

सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा एकविंशति मूर्च्छनाः ।
स्वात्म पुत्र कलत्राद्याःसाक्षाद्रूप धराःस्वयम् ।२

महाह्लाद युताः सर्वे ऋतवः षट् सुविग्रहाः।
स्वगणेनावृताः साक्षाद्रामरास रसोत्सुकाः।२१

सातोंस्वर-तीनों ग्राम-इक्कीस मूर्च्छना-अपने-अपने स्वरूप-पुत्र-नारी गण समेत साक्षात् रूपधर कर स्वयं बड़े उत्साह से आनन्दित होकर आये। विग्रह धारणकर छ ऋतु अपने–अपने गण परिवार के साथ आये, ब्रह्मरामायण के श्रीराम रास महोत्सवका रसपान करने को सभी उत्सुक थे २१

आत्मज्ञान रतस्तत्र ब्रह्मभावे व्यवस्थितः।
नारदस्तत्र चागत्य वीणास्वनमथाकरोत्।२२।
जेतुं गन्धर्वराजं तं तुम्बरूं गान कोविदम्।
तुम्बरुणा समागम्य वाद्ये वाद्य मथा भवत्।२३।
द्वन्द युद्धमारभतां तावुभौ गान कोविदौ।
परस्परं जयेच्छन्तौ वीणा वाद्ये पुनः पुनः।२४।

आत्मज्ञान निष्ठा ब्रह्मभाव परायण नारदमुनि वहां आकर बीणा की स्वरगति निकालने लगे ॥२२॥ गन्धर्वराज गान विद्या विशारद तुम्बरु उस सभा में थे, उनको हरानेकी इच्छा से नारदजी उसके स्वर तान से ऊंचे अपनी स्वर-

गति ले जाने लगे ॥ २३ ॥ -राजा-राजाओं के तान तरङ्ग का परस्पर युद्ध होने लगा, दोनों सङ्गीतकलाकोविद परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से बीणा वाद्य की स्वर-तान गति च्चण-च्चणमें अपूर्व ढङ्गसे बदलते हुए अलौकिक आलाप लेते हुए युद्ध चेत्र में उतर पड़े ॥२४॥

श्रीपार्वत्युवाच–

भगवन्कथं तुम्बरुणा वाद्ययुद्धं मुनेरभूत् ।
देवर्षिणा सह महाद्वेषस्तत्केन हेतुना ॥२५॥

हे भगवन् ! देवर्षि नारदजी से गन्धर्वराज तुम्बरु का बीणा युद्ध कैसे हुआ ? तथा तुम्बरु देवर्षि के साथ किस कारण वश द्वेष करता था ॥ २५ ॥

श्रीशिव उवाच–

स तु गन्धर्वराजो वै विद्यासुकुशलो महान् ।
तद्विद्यानां परीचार्थं तालभङ्गं क्वचित् क्वचित् ॥२६
स्वरभङ्गं क्वचिद्गर्वात्प्रकरोति महेश्वरि ।
विष्णुतालं रुद्रतालं ब्रह्मतालं महोन्नतम् ॥२७
हनुमत्ताल कादीनि लच्मीताल मदोद्धतः ।

वादयन् नारदस्यैव परीक्षार्थं पुनः पुनः ॥२८।
स्वरभङ्गं पदभ्रष्टं क्वचिद्गायति गर्वतः ।
गायकानां समूहे तु चुकोप मुनिसत्तमः ॥२६।

गान विद्या कुशल गन्धर्वराज तुम्बरु उन विद्याओं की परीक्षा करने के लिये जान बूझकर कहीं कहीं ताल भङ्ग करने लगा ॥२६॥ हे महेश्वरि ! वह मदोद्धत होकर नारदजी की परीक्षा करने के लिये कहीं कहीं पद भ्रष्ट गाने लगा कभी विष्णुताल-कभी रुद्रताल-कभी ब्रह्मताल-कभी हनुमत्ताल तो कभी लक्ष्मीतालादिक को बीच बीच में ही भङ्ग कर दे, कभी स्वर ग्राम-कभी मूर्छना-ताला-दिक में व्यतिक्रम करदे, सर्वसाधारण तो उन सूक्ष्म भेदोंको नहीं जानते थे परन्तु गायकों के समूह में मुनिराज नारदजी उसकी यह चपलता धृष्टता देखकर क्रुद्ध हो गये २७-२८-२६

नारद उवाच-

अविज्ञाय प्रभावं मे त्वं पराजयितुं बत।
इच्छन्मुहुस्तृणीकृत्य मां पश्यसि सभान्तरे ॥३०
अशिक्षितस्त्वमां दर्पाज्जेतुमिच्छसि दुर्मते ।

नारदजी बोले-हे दुर्बुद्ध ! इस सभाके बीच में तृण के

समान तुच्छ समझकर तूँ मुझको जीतना चाहता हैं, मेरे प्रभाव को नहीं जानता है, तू अशिक्षित है. घमण्ड में आकर ऐसा करता है ॥३०॥

तुम्बरूरुवाच-

वाद्यविद्यां न जानासि जानासि बहुभोजनम् ।३१
यज्ञादि कर्म कर्तुं त्वं प्रतिद्वारं हि भिक्षणम् ।
नारीणां पुरुषाणाञ्च कल्पयन् कलहं भृशम् ।३२
तुष्णीभव विवादेन गन्धर्वस्तमुवाचह ।

तुम्वरु बोला—वाद्य विद्याको तुम नहीं जानते, बहुत सा भोजन करना ही जानते हो, यज्ञादिक कर्म करने के बहाने यत्र-तत्र भीख मांगना ही तुम्हारा काम है और घर-घरमें स्त्री पुरुषों के बीच झगड़ा मचाना ही तुम्हें प्रिय है, सङ्गीत विद्या को न जानते हो तो व्यर्थ विवाद में उतरने की क्या आवश्यकता, चुप हो जाओ ॥३१-३२॥

एवं प्रवर्तितो वादो मुनेस्तुम्वरूणा भृशम् ।३३
पुनः पुना रणन्वीणौ परस्पर जयैषिणौ ।
तुमुलं भीषणाकारं सर्वेषां पश्यतां महत् ॥३४

अहोरात्रं महद्युद्धं हरि शङ्करयोरिव।
यथा शार्ङ्गं पिनाकेन तथा वीणा प्रवाद्ययोः।३५
एवं सप्त दिवानक्तमभूद्युद्धं च भीषणम्।
मुनीन्द्र तुम्बुर्वोश्चैव गीत वाद्य विशिष्टयोः।३६

इस प्रकार नारदमुनि का तुम्बरु के साथ अति विवाद हो गया, पुनः पुनः वीणा वाजाते हुए दोनों एक दूसरे को पराजित करने का प्रयास करने लगे। सभी के सामने भयङ्कर युद्ध अहो (दीन)रात्र होने लगा, जैसे भगवान् श्रीहरि के साथ शङ्करजी का शार्ङ्गधनुष और पिनाक लेकर तुमुल युद्ध हुआ था वैसे ही वीणा बजाते हुए दोनों का युद्ध मचा, सात दिन सात रात इस प्रकार निरन्तर दोनों सङ्गीत विशारद मुनीन्द्र नारद तथा गन्धर्वराज तुम्बरु की युद्ध चला ॥ ३३ ३४-३५-३६ ॥

तुम्बरुस्तु तदा जित्य नारदं मुनि पुङ्गवम्।
जहास स सभामध्ये सर्वेषां पश्यतां मुहुः ॥३७।
जगाम नारदो ग्लानिं तिरस्कार समन्वितः।
न शशाप ह्रिया युक्तःसभांत्यक्त्वाऽगमत्क्रुधा।३८

तब मुनिपुङ्गव नारदजी को तुम्बरु ने जीत लिया और सभीके सामने सभा के बीचमें बिजयोन्मत होकर हँसने लगा ॥३७॥ नारदजी तिरस्कार और ग्लानि से दुखित चित्त सभा त्यागर क्रुद्ध मन से चले गये, पराजय की लज्जा से मुनि ने गन्धर्वराज को शाप न दिया ॥३८॥

ग्लानियुक्तो ब्रजन्मार्गे चिन्तयन्परमेश्वरम् ।
अद्य त्यक्ष्याम्यहं देहं गन्धर्वेण पराजितः॥३९
बभूवाकाशतो वाणी त्यजशोकं महामुने ।
भजस्व परमेशानं रामं गन्धर्वनायकम् ॥४०॥

गन्धर्व से पराजित होनेके कारण ग्लानिसे दुखित चित्त नारदजी परमात्मा का स्मरण करते मार्ग में मैं आज इस अपमान के कारण प्राणों का परित्याग कर दूँगा' इस प्रकार विचार करते जा रहे थे ॥३९॥ उसी समय आकाश वाणी हुई कि हे महामुनि नारद ! चिन्ता छोड़ दो गन्धर्वनायक भगवान् सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी का भजन करो ॥४०॥

ब्रजायोध्यापुरीं रम्यां तवाभीष्टं भविष्यति ।
त्वं जयिष्यसि गन्धर्वं वीणावादन गायनैः॥४१

हे मुनि ! तुम अयोध्यापुरी जाओ, तुम्हारा अभीष्ट पूरा होगा, वहां जाने पर वीणा वादन और गायन में तुम गन्धर्वराज को जीतने की कला प्राप्त करोगे ॥५१॥

साक्षाच्चन्द्र कला यत्र वीणा वाद्ये विचक्षणा।
श्रीरामरास नवला सर्वयूथेश्वरीश्वरी ॥ ४२ ॥
तस्याः शिष्योऽभव मुने ! वीणावाद्य सुशिक्षणैः।
जित्वा गन्धर्वराजानं सर्वलोकोत्तरं जयम् ॥४३
गान्धर्व वेदं विधिवच्चाधीत्य मुनिसत्तम।
रामरासे सुखं भुक्त्वा कृत कृत्यो भविष्यसि॥४४
वीणावतीति नाम्नी तु रामरासाधि कारिणी।
तस्याःप्रसादतःसम्यक् जित्वा गन्धर्व नायकम् ४५

बीणावाद्यमें अति विलक्षण-सर्व यूथेश्वरियों के ईश्वरी श्रीराम रासविलास में नित्यनूतन उल्लास मयी–साक्षात् श्रीचन्द्रकलाजी वहां विराजती हैं तुम जाकर उनके शिष्य बनो सर्वलोक विलक्षण बीणा वादन की सुन्दर शिक्षा उनके द्वारा प्राप्त कर गन्धर्वराजको जीत सकोगे ।४३।। हे मुनिवर ! विधिपूर्वक गन्धर्व वेद का अध्ययन कर तथा श्रीरामरास का

दिव्य अलौकिक सुख भोगकर कृत कृत्य हो जाओगे॥४४॥ वहां श्रीचन्द्रकलाजी की कृपासे वीणावती नाम होगा सखीका स्वरूप प्राप्तकर श्रीरामरास प्रवेशका अधिकार प्राप्त करोगे, उस दिव्य लीलामें अलौकिक वीणा का स्वर सुनकर गन्धर्व नायक को जीतने की सभी-कलायें आपको हृदयङ्गम हो जायँगी ॥४५॥

नारदश्च ततोऽयोध्यामागत्य मुनि पुङ्गवः।
आश्चर्यभूतां निखिलाधार भूतां सनातनीम्॥४६
वप्र प्राकार परिखा गिरि गह्वरसंयुताम्॥
सरयूजल कल्लोल मृग पक्षीभिरावृताम्॥४७
तामयोध्यां विलोक्यैव मत्वा दुर्गं दुरासदम्।
तदा शोकाकुलो भूत्वा पपात धरणीतले॥४८॥

ऐसी आकाश वाणी सुनकर श्रेष्ठ नारदजी समस्त जगदाधारभूता-नित्य सनातना-परमाश्चर्यमयी उस अयोध्या पुरी में आये॥४६॥ कोट-प्रकार-परिखा-पर्वत-गह्वर आदि दुर्गम दुर्ग वेष्टित तथा मृग-पक्षी-पशु-लता-वृक्षोंसे सुशोभित कल्लोल करती हुई श्रीसरयूजी की धारासे घिरी हुई उस

अयोध्यापुरी को देखकर तथा अत्यन्त दुर्गम कोट में प्रवेश करने की अपनी असमर्थता बिचार कर नारदजी शोक से व्याकुल चित्त पृथिवी पर मूर्च्छित हो गिर पड़े॥ ४७-४८॥

श्रीपार्वत्युवाच-

नारी पुरुष वृन्देषु नारदस्य गतिः सदा।
कथं न तां समीपे च प्राप्तःस मुनिसत्तमः ॥४६

पारवती जी बोलीं हे नाथ ! नारी पुरुष सबके बीच में नारदजी की अबाध गति है तब मुनिवर नारदजी श्रीचन्द्र-कलाजी के पास क्यों न जा सके॥ ४६॥

श्रीशंकर-उवाच

ऋषिर्यदागत्य पुरीमयोध्यां पूर्वं ततश्चापि विशोकवाटिकाम्। सर्वेश्वरी चन्द्रकलादि युक्तो रामः प्रियाभिः सह रासमाश्रितः॥ ५०॥
रासं करिष्यामि परार्द्धमेकं सङ्कल्पमेवं स चकार रामः। द्रक्ष्याम्यहं चन्द्रकलां कथं तां देवीं च यत्नैर्मनसा न दृश्यते॥ ५१॥

जब नारद ऋषि अयोध्याजी आये उसके पहले ही-अशोक वाटिकामें सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू तथा प्राण प्रियतमा श्रीकिशोरीजी के समेत समस्त यूथेश्वरियों के साथ प्रभु ने रासविलास प्रारम्भकर दिया था ॥ ५० ॥ एक परार्द्ध पर्यन्त यह रासविलास जन्य सुख का अनुभव किया जायगा। ऐसा विचार कर श्रीरामजी ने यह रास प्रारम्भ किया। इस बीचमें मनसे भी-अगम्य उस स्थान में देवी चन्द्रकलाजी का दर्शन किस प्रकार मैं कर सकूँगा, इस चिन्ता में देवर्षि मग्न हो गये ॥ ५१ ॥

पुंसां प्रवेशो नहि यत्र सम्भवेन्नारीगणानामधिकारसम्भवात् । मम प्रवेशो नहि सम्भवेदितित्वालोच्य चिन्तां प्रविवेश नारदः ॥५२॥

पुरुषों का तो वहां प्रवेश सम्भव ही नहीं है, स्त्रियोंको भी विशेषाधिकार प्राप्त होने पर सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजूकी कृपासे ही वहां पहुँचना सम्भव हो सकता है, तब मेरा प्रवेश तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकता इसी चिन्ता में नारदजी डूब गये ॥ ५२ ॥

रुदन्ध्यायञ्छ्वसन्भक्त्या नारदो गद्गदस्वरः।
तदा चन्द्रकलां देवीं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥५३॥

प्रेमभक्ति भावसे गद्गद्स्वर-पुलकशरीर-सजल नयन हृदयमें श्रीचन्द्रकला देवीका ध्यान धर कर स्तुति करने के लिये नारदजी धैर्य धारण कर बोले ॥ ५३ ॥

श्रीचन्द्रकला सर्वेश्वरी स्तोत्रम्

साकेत पत्तन विलास विनोद शीलां सौदामिनी शत सहस्र विशाल शोभाम्। श्रीमैथिलेन्द्र नगरी जनपूर्ण सिन्धौ प्रोल्लासदां सततमिन्दुकलां नमामि ॥ ५४ ॥

श्रीसाकेतनगर अयोध्यापुरीमें नानाविध विनोद विलास परायण अपनी शोभाकान्तिसे हजारों विद्युत्कान्तिको लज्जित करनेवाली, श्रीमिथिलेन्द्र नगरी जनकपुरधाम स्वरूप जन पूर्ण समुद्र को आनन्द लहरों से लहरा कर उल्लास प्रदान करनेवाली श्रीचन्द्रकलाजू को मैं सदा सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥ ५४ ॥

यस्याः प्रभा लोकपतींश्च लोकान् बाह्या-
न्तरं भासयते सुचित्रम् ।आश्चर्य्यरूपां च विलास
दक्षां रामेष्टदां चन्द्रकलां प्रपद्ये ।। ५५ ।।

जिसकी दिव्य प्रभा समस्त विचित्र लोक और लोक-
पतियों को सर्वतः प्रकाशित करती है, विचित्र आश्चर्य्यमय
रूप धारण करनेवाली-समस्त दिव्य विलास में सुदक्ष-परम-
चतुर-श्रीसीतारामजी का अभीष्ट पूर्ण कर लीला सुख को
अति सुन्दर बनानेवाली श्रीचन्द्रकलाजी के चरण शरण को
मैं ग्रहण करता हूँ ।। ५५ ।।

वन्दे चन्द्रकलां शरच्छशिमुखीं श्यामार-
विन्देक्षणाम् । भक्तानां भयनाशिनीं करुणया
संकल्प सिद्धिप्रदाम् । श्रीरामेष्टकरीं स्वयं जन-
कजा वामे सदा संस्थितां-सर्वाशा परिपूरणीं
विजयते देवीं भजे शर्म्मदाम् ।। ५६ ।।

शरच्चन्द्रमाके समान पूर्ण मुख शोभा श्रीसम्पन्न श्याम
अरविन्दके समान विकसित राजीवलोचना श्रीचन्द्र कलाजी
की मैं चरण वन्दना करता हूँ । भक्तोंके भय नाश करनेवाली

कृपा करके आश्रितों के सङ्कल्पोकों सिद्ध करनेवाली श्रीराम जी का प्रिय करनेवाली श्रीचन्द्रकलाजू का सर्वदा बिजय हो श्रीजनकराजनन्दनीजू के वाम भागमें विराजमान कल्याण प्रदायिनी सर्वमङ्गल मनोरथ पूरणी श्रीचन्द्रकलाजू का मैं भजन करता हूँ ॥ ५६ ॥

अरुण नलिनशोभा जित्वरे पादपद्मे नखर निकर कान्त्या निर्जितश्चन्द्र बिम्वः। जघनयुग-लमेतत्स्तम्भगर्वं कदल्या विजयकरण दक्षं प्रीति-पात्रं प्रियस्य ॥ ५७ ॥

अरुण गुलाबी कमल की शोभाको पराजित करनेवाले आपके युगल सुचारु चरण हैं, चन्द्रमाकी कान्तिको लज्जित करनेवाली नखों की सुन्दर प्रभा है, कदली स्तम्भ के गर्वको हरण करने में अति प्रवीन आपकी युग्म जघन है जो प्रियतम के प्रेम का पात्र है ॥ ५७ ॥

मृगपति कटिहारी किङ्कणी नूपुरादि क्वणित-ध्वनिमनोज्ञः पूर्णपीनोनितम्वः। उदर मृदुलरेखा

संयुता रोमराजिर्विलसति यमुनाभा नागकुण्डो-
परिस्था ॥ ५८ ॥

मृगपति (केशरी की) कटि कान्ति का अपहरण करनेवाली तथा सुभग किङ्कणी कलाप के सुमधुर स्वर से मनको हरण करनेवाली आपकी सुन्दर कटि है, पूर्ण सुपुष्ट नितम्ब युगल उसकी शोभा अधिक बढ़ाते हैं, उदर में त्रिवली की मञ्जुल मृदुल रेखायें हैं और आपकी नाभि के पास की सुकोमल श्याम रोम पंक्ति ऐसी शोभा देती है, जैसे नाग कुण्ड के चारों ओर घूमकर बहनेवाली यमुना की श्याम धारा ॥ ५८ ॥

मधुर उरसिमध्ये वर्त्तुलाकार रम्ये बहसि
रुचि वितानं पुष्ट वक्षोज युग्मे । कनक कलश-
भासे दैर्घ्यकाठिन्ययुक्ते हरसि हृदयतापं प्रेयसः
कामजातम् ॥ ५९ ॥

हे देवि ! वक्षस्थल के मध्यभाग में गहराई लिये हुए मधुर मनोहर गोल सुपुष्ट रमणीय विकसित उरोजों को धारण किये हो तथा कंचनकलश के समान कमनीय कान्ति

वाले बड़े-बड़े कोमल कठिनता लिये हुए उन दिव्य कूचों को धारण कर आप प्रियतम के मनोकाम जनित हृदय सन्ताप का सत्वर हरण कर लेती हो ॥ ५९ ॥

कनकगिरिवरे वाध्यान निष्ठौ गिरीशौ
सरसि सरसकोकौ श्रीफलेवाप्यपूर्वे । अजित-
मकरकेतोः कन्दुकौ क्रीडनाय भवदुरसि किमे-
तौ शोभमानावुरोजौ ॥ ६० ॥

हे सर्वेश्वरीजू ! कञ्चन गिरि सुमेरु के समान आपकी प्रतिभा पूर्ण दिव्य देह में ध्यान निष्ठ शङ्करजी मानों युगल मूर्ति धारण कर विराजे हैं। अथवा प्रेमरस पूर्ण स्नेहशीतल आपके हृदय में ये दोनों रसमत्त कोक क्रीडा कर रहे हैं किंवा अलौकिक दिव्य श्रीफल शोभा देते हैं अथवा जिसका कोई न विजय कर सके ऐसे मकरध्वज कामदेव की क्रीडा के परम सहायक ये दोनों कन्दुक क्या आपके वक्ष स्थल पर शोभा देते हुए विराजमान हैं ॥ ६० ॥

कलित ललितकण्ठा भूषणानां च राजिः
प्रियतम कर लग्ना भाति विद्युल्लताभा ।

नवल कनकवल्ली मल्लिकापुष्पकीर्णा त्वपि
जनित मनोजप्रेयसः प्रीणनाय ॥ ६१ ॥

सुन्दर मनोहर आपके कण्ठमें पड़ी हुई विविध आभूषणों की पंक्ति प्रियतम की भुजाका संयोग पाकर हे श्रीचन्द्रकला जू विद्युत् लताकी प्रकाशपुञ्ज कान्ति के समान चमक उठती है। नवविकसित स्वर्णलता (हेम यूथिका-पीलीजूही) की सुगन्धित सुमनावलि तथा मालती पुष्पों के साथ गुँथी विखरी हुई पुष्प माला आपके प्रति क्रीडा सुख पाने की अभिलाषा रखनेवाले प्रियतम के मनोरथ पूर्ण करने में बड़ी सहायक होती है, अर्थात् उन कण्ठाभरण तथा विखरी पुष्प मालिकाओं को सँवारने के वहाने प्रियतम को आपके उरोजों का स्पर्श-कपोल कण्ठस्पर्श-तथा आलिङ्गन चुम्बनादि का अवसर प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

कनकरचितभूषा वस्त्रनीलोत्तरीया विलस-
न्नवमल्ली कञ्जकिञ्जल्क रम्या। मधुकर वर
वृन्दैर्भूरि सौगन्ध्य लुब्धै र्हरसि हृदयसारं प्राण
नाथस्य तूर्णम् ॥ ६२ ॥

हे देवि! स्वर्ण रत्न विरचित वस्त्र भूषणालङ्कार तथा हेमतर (स्वर्णसूत्र) एवं नीलरेशम की बनी सुन्दर साड़ी तथा चादर आपके देह पर विलास कर रही है। नवीन खिले हुए कमल एवं मालती पुष्पोंके किञ्जल्कसौरभ लोलुप भ्रमर आपके देहकी दिव्य सुगन्धि पर लुब्ध होकर झुण्डके झुण्ड मँडरा रहे हैं ऐसी परम मनोहर मूर्ति आप अपने प्रियतम के हृदय धनको तुरन्त हरण कर लेती हो॥ ६२॥

सघन नव वनान्ते दिव्यकूले सरय्वा विविधमणि निकुञ्जे स्वप्रियांके विभासि। तरुण तरुतमाले विद्युदाभेऽतिदीप्त्या सघन हृदय-मध्ये निर्मला चन्द्रलेखा॥ ६३॥

श्रीसरयू नदी के दिव्य तट पर सघन प्रमोदवनान्तर्गत विविधमणि निर्मित कुञ्ज-निकुञ्जों में आप प्रियतम के अङ्कमें ऐसी सुन्दर लगती हो जैसे नवयुवक तमाल वृक्षके वनमें घनघटा के बीच विजली की अत्यन्त प्रभा चमक रही हो किंवा श्यामघन प्रियतम के हृदय में निर्मल चन्द्रकान्ति के समान आप परम मनोहर लग रही हो॥ ६३॥

नभसि निविड मेघैः संवृते कुञ्जमध्ये सखिगण परिवीते गायती भिर्मृदङ्गैः । क्वणितरव विताने स्वप्रियांके लसन्ती शमय हृदयतापं सत्वरं तुङ्गवक्षे ॥ ६४ ॥

सावन मास आकाश में सघन मेघ घुमड रहे हैं, उस सुहावन समय में कुञ्ज के मध्य में मृदङ्गादि बाजा बजाकर नृत्य गान हास विलास केलि करनेवाली सुन्दर सखियों से परिवेष्टित, नूपुरादि भूषणों के कलरव से मुखरित प्रियतमके अङ्क में विराजमान उन्नत वक्षस्तनी हे श्रीचन्द्रकलाजू आप हमारे हृदयतापको शीघ्र ही शमन करने की कृपा करिये।६४

शरच्छशाङ्काभमुखेन्दु मण्डले प्रफुल्ल पङ्केरुह चारु लोचने। श्रीचन्द्र विम्बाभ कपोल मण्डले बन्धूकपुष्पाभसुशोभनाधरे ॥ ६५ ॥

शारदचन्द्र के प्रकाश की भांति आप का मुख मण्डल परम सुशोभित है तथा नव विकसित कमल के समान सुन्दर मनोहर नेत्र है, चन्द्रबिम्ब के समान गोल-गोल सुचिक्कन

तेजस्वी कपोल हैं तथा दुपहरिया के फूल की-भांति अरुण सुकोमल आपके ओठ हैं ॥ ६६ ॥

विद्युच्छटा कुमुद शोभित दन्तपंक्तिर्मन्द-स्मितेन प्रति निन्दित चन्द्रभासा। केशावली सञ्चित वेणिका च पुष्पैर्विभाति भुजगेव सुपृष्ठभागे ॥ ६६ ॥

कुमुदकुन्दकली और विद्युच्छटा के समान आपकी शुभ दन्त पंक्ति शोभा देती है, काली-चिकनी फूलोंसे गूंथी हुई सुन्दर वेणी (पीठपर की केशावली) नागिन की भांति लटकती बड़ी मनोहर प्रतीत होती है ॥ ६६ ॥

मृणाल जित्पद्मकरौ सुलक्षणौ त्रैलोक्य राज्य सुखदान परायणौ तौ । वीणान्वितौ चाङ्गुलिचालनाञ्चितौ प्रदर्शय स्वात्म कर ग्रहौ परौ ॥ ६७ ॥

मृणाल की कोमलता को जीतनेवाले कमल के समान मृदुल सुलक्षण सम्पन्न आपके दोनो करकमल त्रैलोक्य के राज्य सुख का दान देने में परायण हैं, वीणा लेकर उसके तारोंपर

चपल अंगुलियों को चलाते हुए आप अपने परमकल्याण-मय श्रीविग्रहका हमको साक्षात् दर्शन कराइये ॥ ६७ ॥

हंसीव गच्छसि यदा परिनर्त्तनेषु मत्तेभव-त्समुपतिष्ठसि रङ्गमध्ये। सिंहीव भासि सखि मण्डल यूथमध्ये द्रक्ष्ये कदाहमतिशोभनभाव-दीप्ताम् ॥ ६८ ॥

जब आप रास नृत्यके लिये जाती हो तब हंसके समान चलती हो रङ्ग सभा के मध्यमें खड़ी होती हो तो मतवाले हाथी की भांति लगती हो, और सखि गणोंके मध्य में सिंह के समान प्रभाववाली प्रतीत होती हो, ऐसे हंस-गति सिंह-गति और गजगमन तीनों एक साथ आप में प्रकट हैं, हे श्रीचन्द्रकलाजू! ऐसी सुन्दर भावों से प्रकाशमान आपके स्वरूप का हम कब दर्शन करेंगे ॥ ६८ ॥

रुचिर प्रियतमेन क्रीडितुं कन्दुकेन चप-लतर दशायां लग्न सङ्कीर्णकेशम्। मद मुदित-कपोलं भाव सञ्जात हासं मम मनसि प्रतिष्ठे-द्रूपमेतत्त्वदीयम् ॥ ६९ ॥

हे आराधनीये ! प्रियतम के साथ रुचिर कन्दुक-क्रीडा करते समय अपनी होडमें जीतने की चपल इच्छा से शीघ्रतापूर्वक खेलने में मस्तक की केशावलि गूँथी हुईवंधी हुई आपकी वेणी का बन्धन ढीला पड़ जाता है और बिखरे हुए केश घाम (पसीने) से भीजे कपोलों से जब सट जाते हैं, तब मद से मतवाले हृदय की हँसी से आपके कोमल कपोल खिल उठते हैं हे देवि ! उस समय का यह मधुर मनोहर आपका रूप हमारे मनमें नित्य निरन्तर वास किया करे ।६६

वीणा प्रवादेन प्रियं वशङ्करी तदेव त्रैलोक्य जयङ्करी सदा । रहस्यभण्डारिणि सर्वदायिके प्रिय प्रियायाश्च प्रसाददे शुभे ॥ ७० ॥

हे सर्वेश्वरीजू ! वीणा बजाने के विवाद(शर्त्त) में आप प्रियतम को वश कर लेती हो तथा उसी के स्वर से तीनों लोकोंका विजय कर लेती हो, हे रहस्य भण्डारिणि ! आप प्रियतमा और प्राणनाथ की शुभ कृपा प्रदान कराकर जीव को कृतार्थ कर देती हो ॥ ७० ॥

तव प्रसादात् विनैव साधनैः प्रलभ्य जीवो

हि प्रियस्य सङ्गमम् । रहस्य लीलादि शुभाधि-
कारी भवेद्विनायासमयत्नतश्च ॥ ७१ ॥

हे पूजनीये ! आपकी कृपा से जीव विना साधन श्रमके विना प्रयास और प्रयत्न के भी रहस्यलीलादि परम सुखका अधिकारी हो जाता है और प्रियतम का पावन संयोग प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

त्वाहं भजे चन्द्रकले कृपार्णवे यूथेश्वरीणां
निखिलैक कारिणीम् । सर्वाधिकारस्य प्रदायि-
नी परे नतोऽस्मि मे देहि प्रियेष्ट दर्शनम् ॥७२।

हे कृपासागरी श्रीचन्द्रकलाजी ! मैं समस्त यूथेश्वरियों की एकमात्र कारण स्वरूपा आपका भजन करता हूँ, जीवों को प्रभुकी सेवाका सभी अधिकार प्रदान करनेवाली हेपरात्परे ! मैं आपके श्रीचरण कमलों में प्रणाम करता हूँ आप अपने प्रिय परमइष्ट स्वरूपका दर्शन देने की कृपा करिये ॥७२॥

प्राण प्रियायाश्चसुमान दायिनी प्राणप्रिय-
स्यापि सुख प्रदायिनी । स्वकीय चातुर्य्य बलेन
सत्वरं विमुच्यमानं ह्यु भयोः समागमम् ॥ ७३ ॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! आप अपने चातुर्य्य के बल से तुरन्त ही प्रिया प्रियतम को मनाकर संयोग करा देती हो, परस्पर समागम कराते समय प्राण प्रियाजूके गौरवकी रक्षा करते हुए प्रियतम के द्वारा सम्मान प्रदान कराती हो तथा प्राणनाथ को भी प्रियाजू के प्रेम मिलन का परम सुख प्रदान करती हो ॥ ७३ ॥

स्वभासया दामिनि वृन्द सन्ततेर्विनिन्द्य शोभां रतिमानमर्दिनीम् । श्रीस्वामिनीं राजकुमारवल्लभां भजाम्यहं चन्द्रकलां परेश्वरीम् ॥ ७४ ॥

अपनी देहकान्ति से बिजली के समूहों की प्रभाको भी निन्दित करनेवाली, अपनी अपार सौन्दर्यराशि से रति के मदका भी मर्दन करनेवाली हम सबके श्रीस्वामिनी तथा श्रीराजकुमारजू की प्राण बल्लभा परमेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू का मैं भजन करता हूँ ॥ ७४ ॥

जानाति कोऽस्या हि परत्वमद्भुतं ब्रह्मादिदेवैरपि गोपितं महत् । योगीश्वराणामपि भाव-

नास्पदं राजेन्द्रपुत्रस्य विमोहकारकम् ॥ ७५ ।

इन सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू का अद्भुत प्रभाव कौन जानता है ? ब्रह्मादिक देवताओं के लिये भी महान् गोपनीय इनका रहस्य है । योगीश्वरों को भी भावनास्पद है उनके हृदय में इनका स्वरूप प्रकाशित होता है तथा राजेन्द्रकुमार श्रीरामभद्रजू को भी आश्चर्य में डालनेवाला इनका विचित्र चरित्र है ॥ ७५ ॥

अप्राकृतं प्राकृतभाव वर्जितं महोत्तमं रास-रसं महत्तरम् । तव प्रसादेन विना न लभ्यते भजामि त्वां चन्द्रकलां रसेश्वरीम् ॥ ७६ ॥

लौकिक माया गुणरहित अलौकिक दिव्य रासरस का महान् उत्तम सर्वश्रेष्ठ सुख आपकी कृपा बिना कभी प्राप्त नहीं हो सकता है हे रसेश्वरी मैं आपको भजता हूँ ॥ ७६ ॥

तव प्रसादेन विना रघूत्तमो न मैथिलीचापि प्रसीदति ध्रुवम् । यस्याःकटाक्षेण भवेत्परेप्सितं भक्त्यैकगम्यं रसराज विग्रहम् ॥ ७७ ॥

हे देवि ! आपकी कृपा बिना रघूत्तम प्रियतमजू तथा विदेहजा प्रियतमाजू की प्रसन्नता नहीं होती है यह ध्रुव सिद्धान्त है इसलिये आपकी जिस कृपा कटाक्ष से परम इष्ट फल प्राप्त होता है तथा भावैक गम्य रसराज विग्रह प्राण-नाथ प्रभु प्रसन्न होते हैं वह कृपा कटाक्ष इस दीन पर भी करने की उदारता दिखाइये ॥ ७७ ॥

यदाज्ञया श्री-गिरिजा-सरस्वती-विधाय-रूपाणि त्रिमोहकानि। विधीश विष्णुप्रमुखाः स्वलीलया वशीकृताश्चन्द्रकले प्रसीद मे ॥७८

जिसकी आज्ञासे लक्ष्मी-पार्वती-सरस्वती आदि महा-शक्तियां जगत् को आश्चर्यमें डालनेवाले नाना प्रकार के रूप धारण कर लीला करती हैं तथा जिसके वशीभूत ब्रह्मा विष्णु-महादेवादि देवतागण सदा ही रहते हैं ऐसी हे श्रीच-न्द्रकलाजू मुझ पर प्रसन्न होजाइये ॥ ७८ ॥

प्रियेण सार्द्धं करकन्दुकं यदा प्रोच्छाल-यन्ती गगने कराभ्याम्। उरोजमालक्ष्य तदा प्रियस्य हर्तुं मनो दिव्य मनोजकन्दुकम् ॥७९।

भवत्यसौ मोह विमूढ चेतसा दासेव साक्षाद्भुव-
नैकभर्त्ता। पराजितश्चाशु तव प्रसंसां करोति
हे देवि जयस्त्वदीयः ॥ ८० ॥

प्रियतम के साथ दोनों हाथों से गेंदको आकाश में उछालती हुई जब आप क्रीडा करतो हैं तब प्रियतम का मन हरण करने के लिये कन्दुक फेंकते हुए प्राणनाथ का लक्ष्य अपनी ओर खींचकर बड़ी विचित्रता से छाती तान कर आकाशमें उछले गेन्द की ओर आप ताकने लगी हो, और अपने वक्ष स्थल में छिपाये कन्दर्प क्रीडा के उन कन्दुकों की प्रियतम को बड़ी चतुराई से इसलिये लक्षित कराती हो जिस से उन उभड़े हुए श्री फलों को देखकर प्रियतम काम विमूढ़ होकर समस्त ब्रह्माण्डभुवनके एक मात्र भर्त्ता होते हुए भी-आपके लिये दासवत् आज्ञाकारी हो जाते हैं, हे देवि। आपका यह मञ्जुल मनोरथ भी तुरन्त सफल हो जाता है, प्रियतम केलि क्रीडामें पराजित होकर आपकी आधीनता स्वीकार कर लेते हैं और "हे देवि। आपका ही विजय हुआ" ऐसा श्रीमुखसे कहकर आप प्रसंसा करते हैं॥ ७९-८० ॥

रामोऽपि त्वत्कोककलां निरीक्ष्य ह सम्भूय तेनैव प्रसंसिता मुहुः। दृष्टा न लोके निखिलं पुरात्विमा तवाङ्गजं कृत्स्नमिति प्रगल्भे ॥८१॥

सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीभी आपकी कोककला को भली -भांति जब देखी तब मोहित होकर बोले हे प्रगल्भे। ऐसी कोक लीला तो संसार में कहीं भी देखने में न आई यह सम्पूर्ण कोकशास्त्र आप के शरीर की इन मनोहर चेष्टाओं से ही जायमान हैं" ऐसा कहकर बार बार प्रसंसा करी ॥ ८१ ॥

अहं प्रसन्नस्तव केलि पेशलैरुदारनर्मेक्षण भाव भूषितैः। उवाच तां चन्द्रकलां इति प्रिये दास्यामि यत्ते मनसेप्सितं प्रियम् ॥ ८२ ॥

श्रीप्राण प्रियतम प्रभु बोले-हे प्रिये। मैं तुम्हारी केलि क्रीडा मनोहर उदार आनन्ददायक हावभाव कटाक्षादि से विभूषित को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, हे श्रीचन्द्रकले । तुम्हारे मनमें जो प्रिय लगता हो वह उत्तम वरदान मांगो मैं आज तुमको अभीष्ट वर देता हूँ ॥ ८२ ॥

श्रुत्वा तु वाक्यं परमं मनोरमं जगाद प्राप्त

मनसेप्सितं महत् । तवेष्टरूपं लब्ध्वा सुदुर्लभं तवातिरिक्तं ह्यपरं न कामये । तत्त्वं त्वदीयं निगमैरगम्यं प्रवर्णितुं कोऽपि न चास्ति लोके । प्रसीदमे दर्शय स्वात्म रूपं मां पाहि पाहीति जगाद नारदः ॥ ८३ ॥

प्रभु का वचन सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं हे प्राण-नाथ। आपकी प्रेमवर्धक मनको रमाने वाली मधुर बाणी सुनकर सब कुछ प्राप्त कर चुकी, अति दुर्लभ आपका स्व-रूप पाकर आपके अतिरिक्त और कुछ भी चाहना नहीं करती हूँ श्री नारद जी कहते हैं हे देवि ! आपका तत्त्व वेदों को भी अगम्य हैं लोकमें कोई आपके महिमा को यथार्थतः पूर्ण वर्णन करने में समर्थ नहीं है। आप स्वयं सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं हे देवि। आप मुझ पर प्रसन्न हो तथा अपने दिव्य निज वपुका दर्शन कराइये, हे श्रीचन्द्रकलाजू ! आप मेरी रक्षा करिये मैं आपके शरणागत हूँ इस प्रकार बार बार श्रीनारदमुनि ने विनयपूर्वक कह कर स्तव किया ॥ ८३ ॥

श्रीशिव उवाच-

इदं रहस्यं परमं कथितं सुव्रते मया ।

अत्यन्तं गोपनीयं च रसिकानां च जीवनम् ॥८४
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्रसिकाग्रणी ।
स एव राघवं पश्येत्साङ्गं तद्रास मण्डले ॥८५॥

श्रीशिवजी ने कहा हे पार्वति ! यह परम रहस्य, रसिकों का जीवन धन-अत्यन्त गोपनीय चरित्र मैंनें तुमसे कह सुनाया हे सुन्दर व्रतवाली ! नारदमुनिकृत यह श्रीसर्वेश्वरी जी का स्तोत्र जो कोई प्रेमपूर्वक पाठ करता है अथवा जो रसिक शिरोमणी इसकी कथा सुनाता है वह सपरिकर श्रीयुगल प्रभु के दिव्य दर्शन रासलीला के समय रासमण्डल में प्राप्त करता है ॥ ८४-८५ ॥

इति श्रीचन्द्रकला सर्वेश्वरी स्तोत्रम् सम्पूर्णम्

नारदोक्त स्तवं श्रुत्वा प्रसन्ना जगदीश्वरी ।
कोटि विद्युत्प्रभाभासा साविर्भूता मनोहरी ।८६

नारदमुनि का स्तोत्र सुनकर प्रसन्न चित्ता जगदीश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू कोटि विद्युत् प्रभा को निन्दित करने वाले अपने दिव्य विग्रह से मनको हरण करनेवाली देवी प्रकट हुई ॥ ८६ ॥

तज्ज्योतिषा व्याप्त दृशो मुनिर्नेत्रे निमील्य च।
मन्नेत्र योग्यं स्वं रूपं दर्शयेत्यभ्ययाचत ॥८७॥
येन द्रक्ष्याम्यहं साक्षाच्चक्षुषा तव विग्रहम्।
तत्त्वं कुरुष्व कृपया यतः शान्तिर्भवेन्मम ॥८८॥

सर्वेश्वरीजी की उस महा ज्योतसे नारदजी के नेत्र मुंद गये, उस तेज को देखनेकी-सहनेकी-शक्ति अपने में न पाकर नारदमुनि ने हाथ जोड़कर कहा हे देवि! मैं अपने इन अल्पशक्ति चक्षुओं से भी आपका दर्शन कर सकूँ एतदर्थ आप अपने तेज का उतना ही प्रकाश करें जिस प्रकाश से आप के दर्शन में कोई बाधा न पहुँचे और शान्तचित्त से आपका स्वरूप साक्षात्कार मैं कर सकूँ ॥ ८७-८८ ॥

सा तु संहृत्य स्वं तेजः साक्षान्माधुर्य्य विग्रहा।
उवाच नारदं प्रीत्या शृणु मे वचनं मुने॥८९॥
कस्मै प्रयोजनाय त्वं स्तुत्वा मां प्रार्थयः कथम्।
किमिच्छसि परं कार्यं तन्मे वद सुविस्तरात्।९०

श्रीसर्वेश्वरीजू ने अपने उस महातेज का संवरण कर साक्षात् महामाधुर्य मङ्गल विग्रह का दर्शन कराते हुए प्रेम-

पूर्वक नारद मुनि के प्रति कहा-हे मुने ! आप मेरा वचन श्रवण करिये और कहिये कि किस प्रयोजन से आपने स्तुति प्रार्थना द्वारा मेरा आवाहन किया है ? आप किस महान् कार्यकी सिद्धि चाहते हैं ? विस्तार पूर्वक वर्णन करिये ८९-९०

श्रीनारद उवाच-

पुरा ब्रह्म सभा मध्ये गन्धर्वे नाप मानितः ।
प्रपन्नोऽस्मि शरण्यां त्वां महादुःखेन पीडितः।९१
तन्मे शमय देवेशि ! कृपया रामबल्लभे ।
वीणावाद्य रहस्यं मे प्रदेहि सकलेश्वरि ॥९२॥
येन मे विजयो लोके सर्वकालेषु सर्वदा ।

श्री नारदजी ने कहा-हे सर्वेश्वरीजू ! पहले एक समय ब्रह्म सभा में तुम्बरु गन्धर्व ने वीणावादन विद्या से मुझको हरा कर सबके सामने मेरा घोर अपमान किया उस दुःखसे पीडित होकर शरणागत वत्सला आपके चरण की शरण में प्राप्त हुआ हूँ ॥ ९१ ॥ हे श्रीरामबल्लभे ! आप कृपाकर वीणा वाद्यका अलौकिक रहस्य प्रदानकर मेरे मनका सन्ताप नष्ट कर दें ॥ ९२ ॥ हे देवेश्वरी ! जिससे लोक में सर्वत्र सदाकाल मेरा विजय ही हो ऐसी कृपा करें ।

श्रीचन्द्रकलोवाच-

इदानीं रामरासेतु नावकाशोऽस्ति मे क्षणम् ॥ ६३
शिक्षयामि कथं स्थित्वा वाद्य विद्या महार्णवम् ।
नास्ति तत्र प्रवेशस्ते रूपेणानेन सुव्रत ॥ ६४ ।
स्त्री स्वरूपेण तत्रैव भविष्यति गतिर्यदि ।
तदात्वां शिक्षये विद्यां गान्धर्वीं लोक दुर्लभाम् ६५

श्रीचन्द्रकलाजीने नारदजी की बात सुनकर कहा कि-हे मुने ! इस समय श्रीरामरासोत्सव हो रहा है इसलिए क्षण भर भी-सावकाश नहीं है, तब यहां रहकर तुमको वीणावाद्य स्वरूप समुद्रवत् गम्भीर विद्या का अध्ययन कैसे कराऊँ ? मैं तुमको अपने साथ ले चलती परन्तु वहां पर इस पुरुष स्वरूप से तुमको प्रवेशाधिकार भी प्राप्त नहीं हो सकता है यदि तुम स्त्री स्वरूप धारण करो तो वहां प्रवेश कर सकते हो और उस रासविलास में ही लोक दुर्लभा गान्धर्वी विद्या की शिक्षा भी मैं तुम्हें प्रदान कर सकूँगी ॥ ९३-९४-९५ ॥

कथं प्राप्स्यामि तद्रूपं देहेनानेन यत्नतः ।
तन्मे कथय देवेशि ! सद्यो यन्मे हितं भवेत् ॥ ६६

श्रीनारदजी ने सर्वेश्वरीजूका वचन श्रवण कर बिनय पूर्वक कहा-हे देवेश्वरि ! इस शरीर से मैं कौन साधन करूँ जिस के द्वारा उस दिव्य नारी रूप को प्राप्त करूँ और शीघ्र ही मेरा अभीष्ट सिद्ध हो जाय ॥ ९६ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच-

जानकी रामयोर्मन्त्रं सम्बन्धं भाव संयुतम् ।
गुरोः कृपा यदा लभ्या तद्रूपं प्राप्स्यसे तदा ।९७
रामरासाधिकारी वै तदानीं त्वं भविष्यसि ।
वीणा वाद्यस्य शिक्षा त्वां करिष्यामि तदा मुने ९८
राम रास सुखं दिव्यं शिक्षामन्त्र प्रभावतः ।
प्राप्स्यसे त्वं गुरोः पादप्रसादाच्चापि दुर्लभम् ९९

श्रीचन्द्रकलाजू ने कहा हे मुने ! श्रीसीतारामजी का युगल मन्त्र भावना सम्बन्ध संयुक्त श्रीसद्गुरु की कृपा से जब प्राप्त करोगे तब वह दिव्य नारी बिग्रह ग्रहण कर सकोगे श्रीरामरास मण्डल प्रवेश का अधिकार भी-तभी होगा, बीणा बजाने की अलौकिक शिक्षा भी हे मुनि ! तभी मैं प्रदान करूँगी, श्रीसद्गुरु की कृपा दृष्टि तथा श्रीयुगलमन्त्र की

शिक्षा के प्रभाव से श्रीरामरासोत्सव का दिव्य दर्शन अना-यास तुम प्राप्त कर सकोगे ॥ ९७-९८-९९ ॥

श्रीनारद-उवाच–

तन्मन्त्र भावना युग्मं सम्बन्धं स्वात्म सम्भवम् ।
सेवां स्वस्याधिकारं च प्रदेहि सकलेश्वरि ।। १००
त्वां हित्वा कुत्र गच्छामि यत्र मेऽतिहितं भवेत् ।

यह सुनकर नारदजी बोले-हे श्रीसर्वेश्वरीजू ! मैं आप के श्रीचरणों को छोड़कर और कहाँ जाऊँ जहां जाने पर मेरा अत्यन्त हित हो, मैं तो अपनी परम हितकारिणी आप को ही जानता हूँ, आप ही कृपा कर युगलमन्त्र राजका उप-देश सम्बन्ध-भावना अष्टयामादि रहस्य प्रदान करिये, जिस के द्वारा प्रभुकी अन्तरङ्ग निज सेवा का अधिकार मुझे भी प्राप्त हो ।। १०० ।।

इतिश्रुत्वा कृपामूर्तिः साक्षाच्चन्द्रकला स्वयम् १ १ ०
प्रदाय मन्त्र युगलं सम्बन्धं भावमात्मनः ।
शृङ्गारं सर्वसारं च रहस्यं गोपितं च यत् ॥१०२

नारद मुनिके श्रद्धाभक्ति युक्त वचन श्रवण कर साक्षात्

कृपामूर्ति श्रीचन्द्रकलाजू ने स्वयं कृपा कर युगलमन्त्रोपदेश सम्बन्ध भावना-आत्मस्वरूप परिचयसर्वस्व सार शृङ्गार रस का गोपनीय रहस्यादि सब विधि पूर्वक प्रदान किया और कही ॥ १०१-१०२ ॥

वीणावतीति नाम्ना वै प्रख्याता त्वं भविष्यसि।
जप मन्त्रं स्वमात्मानं स्त्रीरूपेणैव चिन्तयन्।१०३
ततो रासाधिकारस्ते भविष्यसि न संशयः।
तदा विद्यां प्रदास्यामि वीणा वाद्यादि दुर्लभाम्
।१०४। इत्युक्त्वान्तर्दधे सा तु श्रीमच्चन्द्रकला सखी । नारदस्तच्चकाराथ रहस्ये स्थिर चेतसा ॥ १०५ ॥

हे मुनि ! आप अपने इस देहका विस्मरण कर दिव्य सखी स्वरूप का चिन्तवन करते हुए युगलमन्त्रराजका जप करिये। अब उस दिव्य देह में आप वीणावती सखीके नाम से विख्यात बनोगे, तब रासमण्डल प्रवेश का अधिकार भी निस्सन्देह आप को प्राप्त होगा, उस समय देवदुर्लभ वीणा वादन विद्या का भी मैं आपको दान करूँगी। ऐसा कहकर

श्रीमती चन्द्रकला देवी वहीं अन्तर्ध्यान हो गईं, नारदमुनि भी उनका उपदेश हृदयङ्गमकर एकान्त चित्त से स्वस्वरूप की भावना में तल्लीन हो गये ॥१०३-१०४-१०५ ॥

तदुपदिष्टेन मार्गेण लेभे तद्भाव रूपताम् ।
तेन रूपेण तत्स्थानं गत्वा तद्रासमण्डलम् ।१०६
श्रीमच्चन्द्रकलायाश्च वीणाविद्या मथाभ्यसत् ।
अतिशीघ्रतया सर्वा विद्या प्राप्ता कलावती ।१०७
वीणावतीति विख्याता साऽयाता रासमण्डले ।
रूपेणैकेन सा नित्यं रमते राम सन्निधौ ॥१०८

श्रीचन्द्रकलाजी के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से आराधना करने से नारद मुनि शृङ्गारभाव के अनुरूप विग्रह प्राप्त कर सके और उसी सखी स्वरूप से उस रास मण्डल में प्रवेशाधिकार पाये। वहीं श्रीचन्द्रकलाजू की कृपासे बीणा विद्याका अभ्यास किया, और शीघ्र ही समस्त कलापूर्ण बीणा वादन विद्यासे सम्पन्न हुये, रासमण्डल में आनेपर वीणावती सखी के नाम से नारदजी प्रख्यात हो गये, तबसे एक रूप से देवर्षि सदा सर्वदा श्रीसीतारामजी का सानिध्य सुख भोगने के लिये वहीं रहते हैं ॥ १०६-१०७-१०८ ॥

आगत्य ब्रह्मणो लोके पूर्ववत्सः महामुनिः ।
रचयामास सविधे विधेराज्ञानुसारतः ॥१०६॥
तुम्बुर्वाद्याश्च गन्धर्वा गणाश्चाप्सरसां तथा ।
समागता हि मुनयो यक्ष किन्नरचारणाः ॥११०

तत्पश्चात् नारदजी-पूर्ववत् पुनः ब्रह्मलोक में आये और पितामहकी आज्ञानुसार सङ्गीत-सभा का आयोजन रचा। उस सभामें तुम्बरु आदि गन्धर्व-अप्सराओं के समूह-यक्ष किन्नर चारण-मुनि आदि सभी बड़े उत्साह से कौतुक देखने आये॥ १०६-११० ॥

चक्रुर्गन्धर्व विद्यायां वीणावाद्यं मनोहरम् ।
नारदेन स गन्धर्वो वाद्य वादन तत्परः ॥१११॥
स्मृत्वा पूर्वं कलिं तत्र स्वात्म चातुर्य्य कल्पनैः।
किञ्चित्कालं प्रतीक्ष्यैव तेन जातो मुनेःकलिः११२
नारदस्तुम्बरुं जित्वा सर्वं विद्या कलासु च ।
जडीकृतः प्रभावेण वीणावाद्येन सत्वरम् ॥११३
साक्षाच्चन्द्रकला शिष्यो बभूव मुनि सत्तमः ।
तद्वद्गन्धर्वराजो वै शिष्योऽभून्नारदस्य ह।११४

इत्येवं कथितं देवि चरितं परमाद्भुतम् ।
देवर्षेश्चन्द्रकलया वीणा वादन शिक्षणम् ।२.१५

इति श्रीमल्लोमश संहितायां एक विंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

उस महती सभा में हे पार्वति ! नारदजी और तुम्बरु दोनों ललित वीणा वाद्य बजाने लगे, गन्धर्व विद्या विशारद उन दोनों का वाद्य युद्ध चलने लगा, पूर्वकृत पराजय का स्मरण कर नारदमुनिने कुछ समय अपनी आत्मगत चातुरीको छिपा रखी परन्तु गन्धर्वराज जब मुनि को पुनः परास्त करने की कामना से आगे गति बढ़ाने लगा तब देवर्षि नारद ने उसकी समस्त कलाओंको अपनी कलाके सामने तुच्छ जड़ी भूत बना दिया, अपने दिव्य सङ्गीत के प्रभाव से उसको चुप कर दिया, तब जिस प्रकार साक्षात् श्रीमतीचन्द्रकलाजी की शिष्यता स्वीकार कर मुनि ने गुह्य गन्धर्व विद्या प्राप्त की थी उसी प्रकार गन्धर्वराज तुम्बरु भी नारदजी का सङ्गीत शिष्य बन गया, सभा में सभी लोगों ने नारदजी का और उनके परमगुरु श्रीचन्द्रकलाजू का जय जयकार किया। हे देवि ! यह परम अद्भुत चरित्र श्रीचन्द्रकलाजी द्वारा नारद

जी का बीणा शिक्षण प्राप्त करने का गुप्त रहस्य मैंने तुमको प्रेम पूर्वक श्रवण कराया अब और क्या सुनना चाहती हो कहो ॥ १११-११२-११३-११४-११५ ॥

इति श्रीअवधकिशोरदास श्रीवैष्णव प्रेमनिधि प्रणीतायां सन्तप्रिया व्याख्यायां समन्वितायांलोमशसंहितायां एकविंशतितमोऽध्याय ॥२१॥

श्रीसीतारामचन्द्र युगल प्रभु की जय

अथ 'प्रेमनिधि' प्रणीता 'सन्तप्रिया व्याख्या समन्विताया-

श्रीमल्लोमश-संहितायां

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

श्रीशिव-उवाच

अन्यच्छृणु चरित्रं मे श्रीचन्द्रकलया कृतम् ।
अशोक वाटिकायां वै गोप्य लीला विधायकम् ।१
यतस्त्वं पात्रभूतासि ततो वक्ष्यामि ते प्रिये ।

हे गिरि राजकुमारी ! इस रहस्यलीला श्रवण में तुम्हारी अत्यन्त प्रीति होने से मैं तुम्हारे कहे बिना ही उत्तम पात्र जानकर तुमको गुह्य लीला सुनाता हूँ, हे प्राणप्रिये ! अशोक वाटिका में श्रीमतीचन्द्रकलाजू ने अन्य एक परम अद्भुत चरित्र किया है वही कथा तुमको सुनाता हूँ सावधान होकर श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रेम से सुनो ॥१॥

एकस्मिन्समये देवि ! रास मण्डल मध्यतः ॥२॥
युग्मपक्ष विधायिन्यः सख्यश्चैव परस्परम् ।
भूर्यकुर्वत विवादं वै पक्षद्वय समाश्रितम् ॥३॥

काश्चिद्विदेह नन्दिन्याः परत्व प्रति पादिकाः।
काश्चित्तु राजपुत्रस्य शशंसुःकीर्तिमुज्वलाम् ।४

हे देवि ! एकबार रासमण्डल के मध्य में दोनों पक्षोंकी सखियों के बीच अपने-अपने पक्षस्थापनकी चेष्टा में बड़ा विवाद मचा। कोई तो विदेहराज कुमारी का परत्व प्रति पादन करती थी तो कोई चक्रवर्तिकुमार की उज्वल कीर्तिका गान कर अपने पक्ष का समर्थन करती थी ॥ २-३-४ ॥

एवं कौतूहलं चक्रुः स्वे-स्वे पक्षे समुत्सुकाः ।
खण्डनं मण्डनं भूरि शास्त्रन्यायानुदर्शनैः ।५।
प्रमाणभूतैर्निखिलैः प्रत्यक्षादि प्रदर्शनात् ।
शरणागत रक्षायां पुण्ययापरतात्मनम् ॥ ६ ॥
रक्षणे तत्पराणां च मर्षणे दुःखदायिताम् ।
मित्रत्वं शत्रुतायां वै कस्याधिक्यं प्रदर्शये ॥७॥

इस प्रकार अपने-अपने पक्षका विजय करने के लिये सभी बड़ी उत्कण्ठित रही। अपने पक्ष का मण्डन तथा अपर पक्षका खण्डन शास्त्रानुकूल न्याय सङ्गत कर रही थी प्रत्यक्षादि प्रमाणों को भी दिखाती हुई शरणागतों की रक्षामें

कौन अधिक श्रेष्ठ है यही सिद्ध करने में अपनी सम्पूर्ण तर्क-शक्ति लगा रहीं थी। कितनी इसी बिचारमें रही कि-आश्रितों की रक्षा तथा भक्त सन्तापी दुष्टों का नाश करने में एवं मित्रता शत्रुता में कौन किससे अधिक हैं क्या बताया जाय ॥ ५-६-७ ॥

सुग्रीवादि कपीन्द्राणां राक्षसीनां च मर्षणे।
क्षमा शीलत्व करुणा श्रीसीताया मताधिका।८।
मित्रत्वे च हरेः प्रीतिः शत्रुत्वे च बधस्तथा।

कोई कहती हैं "हम तो किसी का पक्ष न लेकर यही बात उचित समझती हैं कि-सुग्रीवादि आश्रितों को सेवा में बिलम्ब हो जाने से उस दोष के दण्डमें श्रीलक्ष्मणजी द्वारा कितना भय-त्रास दिखाया गया परन्तु श्रीस्वामिनीजूने अपने देह को सभी प्रकार से दुःख देनेवाले जयन्त तथा राक्षसी आदिको दण्ड देते समय प्रभु को और मारुति कुमार को निवारण कर अत्यन्त कृपा परवशता प्रकट कर दिखायी है, प्रभु मित्रों से प्रीति करना तथा शत्रुका बध करना यह नीति व्यवहारमें लाते हैं परन्तु श्रीकिशोरीजी शत्रु-मित्र सभी अपने

ही जानकर सब का परम कल्याण चाहती हैं किसी को दण्ड प्रदान नहीं करती हैं ॥ ८ ॥

श्रीशिव उवाच–

शैथिल्यं स्वात्मपक्षस्य दृष्टवा राजीवलोचनः ।
इति सञ्चिन्तयामास हृदि संयतचेतसा ॥९॥
यद्यहं चात्र तिष्ठामि तदा हास्यो भवेन्मम ।
मत्पक्ष निरतानां वै मनो ग्लानि र्भविष्यति ।१०
तदा हास्यं करिष्यन्ति सख्यः सर्वास्तु मे बहु।
ततोऽन्यत्र व्रजाम्यद्यवादःशान्तो भविष्यति।११

श्रीशङ्करजी बोले-हे पार्वति ! राजीवलोचन प्रभुने अपने पक्षकी शिथिलता देखकर मनमें स्थिर चित्तसे विचार किया यदि अब मैं यहां पर रहा तो मेरी हंसी होगी, तब मेरे पक्ष वालों के मनमें ग्लानि आवेगी उनका गिरा हुआ मन देख कर पर पक्षीय सखियां मेरी ओर भी हँसी करेंगी इसलिये यही उचित है कि मैं आज अभी कहीं अन्यत्र चला जाऊँ, ऐसा करने से विवाद अपने शान्त हो जायगा॥९-१०-११॥

इति व्याजेन केनापि राजपुत्रो जगाम ह ।

एकान्ते कुञ्ज गहने स्वात्मानं गोपयन्रहः ।१२।
व्यतीते तु क्वचित्काले विस्मयः सुमहानभूत् ।
सखीनां चैव सर्वासां मनस्तापोऽति दुस्तरः।१३
मनांसि तस्करोऽस्माकं हृत्वा कामं धनानि च।
गतवान् कुत्र देशेषु पश्यध्वं सत्वरं च तम् ॥१४
ततस्तु सहजानन्दारूपिणी सकलेश्वरी ।
विरहोत्कण्ठिता भूत्वा ह्यु दतिष्ठत्सहाङ्गना।१५

ऐसा विचार कर किसी बहाने से राजकुमार अन्यत्र कहीं चले गये, एकान्त गहन निकुञ्जमें अपने को छिपाकर बैठ गये । कुछ काल बीतने पर वहां एक बड़ा विस्मय हुआ सभी सखियों के मन का वह विजयोन्लास नष्ट हो गया, मनमें प्रियतम के वियोग का दुस्तर विरह सब को सताने लगा ? वह कुटिल चोर हमारा मन हृदय धन चुरा कर कहां चला गया आप लोग सब जगह जाकर देखो ! पता लगाओ ! शीघ्र ही खोज कर लाओ ! ऐसा कहकर सहजानन्द स्वरूपिणी सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी अपनी आत्मीय अङ्गजा सखियों समेत विरह में व्याकुल होकर आंख मूंद कर बैठ गयी ॥ १२-१३-१४-१५ ॥

अन्वेषणे रताः सर्वाः कुञ्जे-कुञ्जे बने-बने ।
अन्वेषणेन न प्राप्ता राजपुत्रं विचक्षणाः॥१६।
ततश्चिन्ताकुलाः साक्षाद्विरहासक्त मानसाः ।
पुनः पुनर्मनस्तापं कुर्वन्त्यो रामवल्लभाः ॥१७

कुञ्ज-कुञ्ज में, वन-वन में सर्वत्र सब सखियां खोजने लगी, परन्तु कहीं राजपुत्र का पता न लगा। तब चिन्तासे व्याकुल विरह वेदनासे दुखित चित्त रामवल्लभा परम बिलक्षणा वे सब विलाप करने लगी ॥ १६-१७ ॥

श्रीसीतोवाच-

युस्माभिर्मत्प्रियो वादे पराजित्य पलायितः ।
न सोऽस्ति यः प्रियतमं पुनर्मामद्य मेलयेत्।१८
किं करोमि क्व गच्छामि स उपायो न दृश्यते ।
येनोपायेन पश्येयं वल्लभं श्यामसुन्दरम् ॥१९।
कन्दर्पकोटि लावण्यं मधुरं रसविग्रहम् ।
अस्माकं हर्षजनकं नानालीला विधायकम्।२०
एवं विलप्य सा तूष्णीं भूत्वा शोक समन्विता ।
अधोमुखी शोचतीव विलिखन्ती महीतलम्।२१

श्रीकिशोरीजी बोली "हे सखियो ! आप लोगों ने आपस में विवाद कर राजकुमार को हरा दिया, इसीलिये वे यहां से चले गये, आप सबमें कोई ऐसा नहीं है जो प्रियतमको खोज कर आज पुनः उनसे मेरा मिलन करा देवे ॥ मैं क्या करूं ? कहां जाऊँ ! किस उपाय से श्यामसुन्दर मिलेंगे ? कोई ऐसा उपाय जानती हो तो बताओ जिस उपायसे प्राणवल्लभ प्रियतम का मैं दर्शन पा सकूँ ॥ कोटि कन्दर्पलावण्यधाम मधुर—रसविग्रह-नाना भांति केलिकला विलास विलक्षण-हमारा हर्ष बढ़ानेवाले-राजीवलोचन कहां चले गये" ऐसा विलाप करती-करती शोक से विकल हृदय श्रीप्रियाजू चुप हो गई, पृथिवी को नखोंसे खोदती हुई नीचे मुँह करके मौन होकर बैठ गई ॥ १८-१९-२०-२१ ॥

देवि ! तदन्तरे श्रीमद्राजपुत्रोऽति विह्वलः ।
जग्राह वंशिकां दिव्यां काममन्त्रमयीं पराम् ।२२
श्रां-श्रां क्लीं-क्लीं कामरूपे प्रिये मत्प्राणवल्लभे ।
आगच्छागच्छ देवेशि सीते स्वानन्दरूपिणी ।२३
क्लीं क्लीं स्वाहेति मन्त्रेण प्राभिमन्त्र्य विधानतः।
आपूर्ण वंशिकां सम्यक् वादयामास तत्ववित्।२४

हे पार्वति ! इसी बीच में श्रीराजेन्द्रकुमार प्रिया जू के विरह में अत्यन्त विह्वल होकर उनको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अपने हाथ में दिव्य काममन्त्रमयी सर्वश्रेष्ट वंशी को लेकर बजाने लगे। "आं-आं क्लीं क्लीं" आदि काम बीजमन्त्रों का प्रयोग लगाकर, हे प्रिये ! हे प्राणव-ल्लभे ! हे दिव्य कामस्वरूपे ! हे सीते ! हे आनन्द स्वरू-पिणि ! हे सर्व देवेश्वरी ! आप शीघ्र ही आकर मेरे हृदय को आनन्द प्रदान करिये, प्रयोग के विधानानुसार अन्त में "क्लीं-क्लीं स्वाहा" आदि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सर्व तत्त्व विशारद राजकुमार वंशीध्वनि का विस्तार करने लगे मुरली बजाने लगे ॥ २२-२३-२४ ॥

तद्ध्वनि सा समाकर्ण्य विरहोत्पादिकां पराम्।
आकृष्टचित्ता चकिता ह्युदतिष्ठत्तदासनात्।२५
चतुर्दिशं वीक्षयन्ती कुत्रेयं वंशिकाध्वनिः।
तत्र गच्छाम्यहं त्वद्य चेति निश्चित्य तत्परा।२६

विरहोत्पादिका उस परम रमणीय वंशीध्वनि का श्रवण करते ही चकित मन से आकृष्ट होकर अपने आसन पर से

श्रीकिशोरी जी उठ गई, और यह मनोहर ध्वनि कहां से आती है ? इसको पता लगाने के लिये चारों ओर देखने लगी, मनमें निश्चय कर लिया कि जहां से यह ध्वनि आती है वहीं मैं जाती हूँ ॥ २५-२६ ॥

ततश्चन्द्रकला देवी चेष्टा विज्ञा वचोऽब्रवीत् ।
मैथिलेन्द्र सुते देवि ! कथमुद्विग्न मानसा ।२७।
गन्तुमिच्छसि तत्रैव यत्रैषाध्वनिरुत्थिता ।
आकर्षयामि तं चात्र विद्यया वीणसंस्थया ॥२८
राजपुत्रं बलात्तूर्णं कुरुशीघ्रं मनः स्थिरम् ।
यदि नायात्वसावत्र, राजपुत्रो महाबलः ॥२९॥
तदा वीणां न गृह्णामि प्रतिज्ञामेऽति सुस्थिरा ।

श्रीस्वामिनी जी की चेष्टा को भली-भांति परखने वाली श्रीचन्द्रकलादेवी ने उनका मनोरथ जानकर बड़े प्रेम से कहा हे मैथिलेन्द्र राजकुमारी ! आप इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो ? जिस ध्वनि को सुनकर आप विवश होकर वंशी बजाने वाले के पास जाना चाहती हो उस राजकुमार को मैं अपनी वीणा के स्वर से आकर्षित कर बरबश यहां खींच लाती हूँ,

आप अपने मनको स्थिर करें, आपको अपनी ओर खींचने वाला स्वयं ही क्यों न खींचाकर यहां चला आवे, क्या उनकी बन्शी से आपकी यह वीणा कुछ कम प्रभाव वाली थोड़े ही है, आपके सामने मैं दृढ़ प्रतिज्ञा करती हूँ कि महा-बल राजकुमार को यदि आज खींचकर यहां न बुला लूँ तो यह वीणा फिर कभी हाथ में न उठाऊँगी ॥२७-२८-२६॥

अत्रैव तिष्ठ राजेन्द्रपुत्रि ! केलि सुसंविदे ।
पश्य कौतूहलं मेऽद्य त्यक्त्वा शोकं महत्तरम् ।३०
द्वारि-द्वारि प्रतिहार्यः स्थापयिष्यामि यत्नतः ।
प्रवेशं राज पुत्रस्य वारणाय यशस्विनि ॥३१॥
ममाज्ञया विना तस्य महद्यत्नकृतेऽपि च ।
न प्रवेशो भवेदत्र राजपुत्रस्य धीमतः ॥ ३२ ॥
त्वत्समीपे प्रतिहारी सन्देशं नयते तु या ।
मत्समीपे प्रेषयतामिति मे निश्चिता मतिः ।३३।

केलिकोविदा हे श्रीराजकुमारी जू ! आप यहीं रहिये, आपको कहीं जाने का काम नहीं है ? आप को खींचने वाला आकर्षित होकर स्वयं यहां आ जायगा, शोक का परि-

त्यागकर आप आज मेरा कौतुक देखिये। द्वार-द्वार पर पहरेदार खड़ा कर देती हूँ, हे यशस्विनी! राजकुमार के अकस्मात् प्रवेश का निवारण करने के लिये मैं ऐसा करती हूँ। मेरी आज्ञा बिना कितना ही विनय निहोरा करें आप परम चतुर राजकुमार को भीतर न आने देवें, सन्देशा लेकर उनका कोई दूती आवे तो उसको आप सीधा मेरे निकट भेज दीजियेगा, मेरा यह निश्चय है कि मैं उनको यहां बुला करही छोड़ूँगी॥ ३०-३१-३२-३३॥

इति श्रुत्वा वचो देवी हर्ष विस्फारितेक्षणा।
कुरु यत्नं प्रिये शीघ्रं प्रियः प्राप्नोतु मां यथा।३४

ऐसा वचन सुनकर श्रीचन्द्रकला जी से आनन्द से विकसित नेत्र वाली श्रीस्वामिनी जू बोली-हे प्रिये। आप शीघ्र ही ऐसा यत्न करें कि प्रियतम जू तुरन्त ही मुझे आकर मिले॥३४॥

ततश्चन्द्रकला देवी प्रतिद्वारं शतं शतम्।
स्थापयामास विधिव द्यष्टीहस्तान् सखीगणान्३५
सप्त कक्षावृते कुञ्जे सखिभि र्बहुभिर्वृते।

महार्हे रत्नपर्यङ्के संस्थाप्य सकलेश्वरीम् ॥३६।
अहमाकर्षयिष्यामि राजपुत्रं कलाविदम् ।
बोधयामास विधिवद् वीणामादाय वेगतः।३७।

तत्पश्चात् श्रीचन्द्रकलादेवी ने प्रत्येक द्वार पर सौ-सौ सखियों को खूब समझाकर हाथ में छड़ी धारण कराकर पहरे पर नियुक्त कर दी। सात आवरण के अन्दर निकुञ्ज में रत्नपर्यङ्क पर सर्वेश्वरी श्रीस्वामिनी जू को विराजमान कराकर श्रेष्ठ श्रेष्ठ बहुत सी सखियों को उनकी परिचर्या में लगाकर मैं अब कलाविदों में श्रेष्ठ राजकुमार का आकर्षण करती हूँ आप स्थिर मनसे आनन्द पूर्वक यहां विराजिये, ऐसा कहकर अतिशीघ्रता पूर्वक अपनी मोहिनी बीणा हाथ मे उठाई ॥ ३५-३६-३७ ॥

कुञ्जान्तरे चन्द्रकला वीणावाद्यं मनोहरम् ।
मोहनाय परेशस्य पञ्चबाणात्मकं परम् ।३८।
संगृह्य शीघ्रतो देवी रणत्कारं ततोऽकरोत् ।
दिशां च विदिशां चैव पूरयामास सा ध्वनिः।३९
स्वर्गं पातालमेवं च भेदयित्वा जगत्त्रयम् ।
चेतनाचेतनांश्चैव वीणा शब्दो व्यमोहयत् ॥४०

अपने दूसरे कुंज में जाकर परमात्मा को भी मोहित करने वाला-पञ्चबाणों का परम जन्म स्थान स्वरूप-मनको हरने वाला—वीणा का मधुर स्वर श्रीचन्द्रकलादेवी ने प्रकट किया वह वीणा ध्वनि क्षण मात्र में दिशा विदिशाओं में भर गई, स्वर्ग-मर्त्य-पातालादि त्रिभुवन को भेद कर वह वीणाध्वनि चेतन अचेतन सबको मोहित करने लगी ॥ ॥ ३८-३६--४० ॥

स्थावरा जङ्गमाश्चैव मोहमापुश्चतत्क्षणम् ।
पंचवाणात्मकः शब्दो राजपुत्रस्य कर्णयोः ।४१
प्रविश्य हृदयं भित्त्वा महदुद्वेगकारकः ।
ममन्थ मदनोन्मादं क्षोभयामास तन्मनः ।।४२।
त्यक्त्वा धैर्य्यं वंशिकां तु प्रजगाम तदुन्मुखः ।
न शशाक तदा स्थातुं राजपुत्रो महाबलः ।४३

स्थावर-जङ्गम सभी उस ध्वनि को सुनकर मोहग्रस्त हो गये, कामना बढ़ाने वाला वह राग राजकुमार के कानों में भी प्रवेश कर गया, उस राग ने हृदय में जाकर महान् उद्वेग पैदा किया, मनको एकाएक मथ डाला; चित्त क्षुभित हो गया,

अपने आपको महाबल राजकुमार न सम्हाल सके, धैर्य छूट गया, वंशी कहीं गिर पड़ी और जिस ओरसे वह वीणानाद आता था उसी ओर आतुर होकर चल पड़े ॥ ४१-४२-४३ ॥

सर्पमन्त्रविदामन्त्र जलक्षेपाद्यथा द्रुतम् ।
समायाति महासर्प स्तां दिशां विह्वल स्वयम् ।४४
तथा स राजपुत्रोऽपि वीणावाद्येन मोहितः ।
कुञ्जान्निःसृत्य शीघ्रं तु चचाल ध्वनि सम्मुखम्४५
स्वगौरवस्य रक्षार्थं कृत्वा यत्नं प्रयत्नतः ।
न शशाक समर्थोऽपि राजपुत्रोऽति विह्वलः।४६।

सर्पमन्त्र को जानने वाले जैसे अभिमन्त्रित जलका छींटा डालते ही जहां हो वहींसे महासर्प को अपने पास बुला लेतेहैं वैसे ही वीणा ध्वनि विमोहित राजकुमार विह्वल होकर स्वयं ही उस दिशामें दौड़े जिस दिशासे ध्वनि आ रही थी। जिस कुञ्जमें छिपकर वंशी ध्वनि कर प्रियाजू को बुलाना चाहतेथे उस अपने कुञ्जसे बाहर निकले, अपने गौरवकी रक्षा के लिये बार-बार मनको समझा बुझाकर रोकते थे परन्तु यत्न करने पर भी मनको वशीभूत करनेमें विह्वल बने राजकुमार समर्थ न हुए ॥ ४४-४५-४६ ॥

कामवेगेन रागात्मा ध्वनिमुद्दिश्य वेगतः।
कुंज कुंजान्तरं प्रागाच्छ्रूयते यत्र सा ध्वनिः।४७

तत्र तत्र समागत्य न दृष्ट्वा वाद्य वादिनीम्।
आगतः प्रथमे द्वारे महाकुंजस्य पूर्वतः ॥४८॥

कामना पीड़ित अनुरक्त चित्तसे ध्वनि पहचानते हुए शीघ्रता पूर्वक कुञ्ज-कुञ्जमें घूमने लगे, वहां जाने परभी- वीणा बजाने वाली को न देख कर ध्वनिका अनुसन्धान करते करते महाकुञ्जके प्रधान द्वार पर पूर्व दिशा में पहुँचे ४७-४८

यष्टीहस्ता प्रतिहारी निवार्य प्राहसन्मुदा।
तव प्रवेशो नैवात्र विना चन्द्रकलाज्ञया ॥४६॥

वहां हाथमें छड़ी लिये पहरा देनेवाली सखियों ने राजकुमार को रोककर हँसते हुए कहा कि यहां श्रीचन्द्रकलाजी की आज्ञा विना आपको प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। ४९

तदा तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाच रसोत्सुकः।
मत्प्रियां प्रतियाहि त्वं प्रार्थनां मे निवेदय ॥५०।

द्वारि तिष्ठति ते प्रेयान् दर्शनोत्सुकमानसः।
विरहाक्रान्त चित्तश्च त्वमाज्ञापय यदीप्सितम्।५१

तब उसके ऐसे वचन सुनकर रसोत्सुक रसिक शिरोमणि राजकुमार उस पहरेदार सखी को कहने लगे-तुम मेरी प्राणप्रियाजू के पास जाकर कहो कि दरवाजे पर आपके प्रियतम आपके दर्शन की अभिलाषा में खड़े हैं, आपके विरह में अत्यन्त व्याकुल हैं आपकी क्या इच्छा है आज्ञा दीजिये, हम लोग जाकर उनसे कहें ॥ ५०-५१ ॥

राजपुत्र वचः श्रुत्वा सा जगाम त्वरान्विता ।
यत्रैकान्ते राजपुत्री सा तिष्ठति सखीवृता ।५२
सा समागत्य संस्तूय वृत्तं सर्वं न्यवेदयत् ।
आज्ञां प्रतीक्षते कान्तो द्वारि तिष्ठति दैन्यभाक्५३

राजपुत्रके ऐसे वचन सुनकर वह पहरेदार सखी एकान्तमें अन्य सखियों से घिरी हुई श्रीस्वामिनीजू विराजती थी वहां गयी और प्रणामकर प्रार्थना पूर्वक समस्त वृतान्त निवेदन किया कि द्वार पर प्राणनाथ प्रभु दीनवत् विरहातुर खड़े आपके पास आनेकी आज्ञा चाहते हैं ॥ ६२-५३ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा प्रिया तां प्रत्युवाच ह ।
गच्छ चन्द्रकलां भेदं नाहं जानामि किंचन ॥५४

तत्र गत्वा प्रतिहारी स्वामिन्योक्तान्युवाच ह।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा चन्द्रकला ब्रवीदिदम् ।५५
प्रथमद्वारतः शीघ्रं प्रवेशय प्रियोत्तमम् ।
तथेत्युक्त्वा जगामाथ राजपुत्रमथाब्रवीत् ॥५६॥
शीघ्रं गच्छ महाराज कुंजेयत्रध्वनिर्भवेत् ।

इस प्रकार उसका वचन सुनकर श्रीकिशोरीजी ने कहा कि मैं इस भेदको कुछ नहीं जानती, तुम शीघ्रही चन्द्रकला को जाकर सब बातें कहो। पहरेदार सखी ने वहां जाकर स्वामिनीजू की आज्ञा और सब वृतान्त कह सुनाया, उसका वचन सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी ने यह उत्तर दिया। हेसखि! जाओ। प्रियतमजू को शीघ्रही प्रथमद्वार के भीतर आने दो तथास्तु कह कर वह सखी द्वार पर आई और राजकुमार से बोली कि हे प्राणनाथ! जहां से यह मधुर ध्वनि आरही है उसी कुञ्ज में जानेका यह मार्ग है आप सुख पूर्वक पधारिये ॥ ५४-५५-५६ ॥

प्रविवेश तदा तत्र द्वितीय द्वार सन्निधौ ॥५७॥
तस्मिन्द्वारे प्रतिहारी निवार्यपुनरब्रवीत् ।
आज्ञां विना प्रियायास्तु मा गच्छाभ्यन्तरेप्रभो ५८

इस प्रकार आज्ञा मिल जाने पर राजकुमार भीतर गये, जब द्वितीय द्वार पर पहुँच गये तब वहां की द्वारपालिका ने आपको रोक लिया और कहा कि हे प्रभो ! जबतक श्री प्रियाजूकी आज्ञा सूचना नहीं मिल जाती तब तक आप भीतर प्रवेश मत करिये ॥ ५७-५८ ॥

आज्ञां प्रियायाःप्राप्तोऽस्मि द्वार पालिनि सुव्रते ।
प्रिया दर्शन कामोऽहं तत्र गच्छामि सत्वरम् ।५९

उसके ऐसे वचन सुनकर राजकुमारजू ने कहा हे द्वार पालिनि । प्रियाजू की प्रवेशाज्ञा प्राप्त कर मैं यहां आया हूँ हे सुव्रते ! मैं प्रिया जू के दर्शनार्थ ही शीघ्र उनके पास जा रहा हूँ ॥ ५९ ॥

प्रतिहार्युवाच-

अस्माभी रक्षिता द्वारान्न प्रवेष्टुं त्व मर्हसि ।
तस्मादन्यत्र गच्छाशु प्रियां द्दष्टुं यदीच्छसि ।६०

प्रियतम के वचन सुनकर द्वारपालिका बोली हे नाथ ! हम लोगों द्वारा सुरक्षित इस द्वार से तो आप विना आज्ञा

प्रवेश नहीं कर सकोगे इसलिये यदि शीघ्र ही प्रिया जू के दर्शन की इच्छा हो तो जाइये किसी अन्य द्वार से प्रवेश कर जाइये ॥ ६० ॥

स तां प्रति हस्याशु प्रोवाच पुरुषोत्तमः।
ममाप्यागमनं ब्रूहि प्रियायै सत्वरं प्रिये ॥ ६१ ।

उसका बचन सुनकर हँसते हुए पुरुषोत्तम प्रभु ने कहा-जब ऐसी बात है तो जाओ शीघ्र ही मेरे आगमन की सूचना प्रिया जू को दे आओ ॥ ६१ ॥

राजपुत्रोक्तमाकर्ण्य तत्रागत्य तथा करोत्।
राजपुत्री तु तां प्राह गच्छ चन्द्रकलां प्रति ।६२।
सा करिष्यति यत्कार्यं तन्मे प्रियतरं भवेत्।
सा समागत्य तद्वृत्तं श्रावयित्वा सखीं प्रति ।६३
तदुक्तं पूर्ववत्कृत्वा प्रावेशयत्तमादरात्।
एवमेवं प्रतिद्वारे षष्ठकक्षागते सति ॥ ६४ ॥

श्रीराजपुत्र का वचन सुनकर द्वारपालिका ने वैसा ही किया, श्रीराजकुमारी जू से सब वृत्तान्त कह सुनाया, उनकी आज्ञा हुई कि चन्द्रकलाजू जो करेगी वही मुझे अति प्रिय

होगा, तब वह सखी चन्द्रकला जी के पास गई और वृत्तान्त यथावत् कह सुनाया, श्रीचन्द्रकला जी ने कहा कि पूर्ववत् परमादर सहित प्राणनाथ को आने दो। इसी प्रकार तीसरे-चौथे-पांचवे-छठे सभी द्वार पर आज्ञा प्राप्त करने को आपको ठहरना पड़ा, जब आगे आपने प्रवेश किया तब।
॥ ६२-६३-६४ ॥

तदा चन्द्रकला देवी श्लाघिता वीणविद्यया।
प्रियाया मान रक्षार्थं कृत्वा कौतुकमद्भुतम् ॥६५
भ्रामणार्थं प्रियस्यैव चकार ध्वनिमुत्तमाम्।
आगच्छागच्छ त्वं कान्त ह्यत्र तिष्ठाम्यहं प्रभो६६

श्रीचन्द्रकलाजी ने प्रिया जू के सम्मान की रक्षा के लिये वीणा द्वारा चित्र विचित्र ध्वनि निकालना प्रारम्भ किया, प्रियतम जू को थोड़ा घुमाने फिराने की इच्छा से प्रिया जू की कोमल कण्ठ ध्वनि के समान ही है प्रियतम! आइये पधारिये! हे कान्त! मैं यहीं बैठी हूँ इस प्रकार वीणा का स्वर निकालने लगी ॥ ६५-६६ ॥

प्रियायाः सदृशं शब्दं वीणामध्ये पुनः पुनः।

स्थानान्तराद्ध्वनिं प्राप्य तत्र गच्छति सप्रियः ६७
तावद्वीणाध्वनिं सा तु ह्यन्यस्थानाद् करोति च ।
एवं परिभ्रमन् कुञ्जे बहुकालं पुनः पुनः ॥६८
प्रियां न प्राप्य कुत्रापि रुरोद भृश दुःखितः ।
यत्र यत्रध्वनिस्तस्या स्ततत्र भ्रमाद्भ्रमन् ।६९

प्रियाजू के समान ही वीणा से पुनः पुनः शब्द सुनकर प्रियतमजू उस ओर जाते हैं तबतक वैसा ही शब्द दूसरी ओरसे आता है जब आप घूमकर वहां पहुँचते हैं तब तीसरी दिशासे वैसा ही शब्द सुन पड़ता है इस प्रकार उस ध्वनि का अनुगमन करते आप बड़ी वार तक चारों ओर घूमे परन्तु कहीं प्रियाजूका दर्शन प्राप्त न हुआ, तब उनके मिलन की आतुरता से व्याकुल होकर ध्वनि के पीछे भ्रमवश भ्रमण करते करते थक गये और रुदन करने लगे ॥ ६७ ६८-६९

न प्रियां पश्यति यदा तदा शोकाकुलोऽभवत् ।
दर्शनं देहि मे शीघ्रं हा हाश्रीप्राणबल्लभे ॥७०
अति कोमल चित्तं ते कुतः काठिन्यमागतम् ।
किंवा श्रीफल संसर्गाद् घृतकाठिन्यवत्प्रिये ।७१

निर्दयत्वं समायातं कथं मां प्रति वल्लभे ।
अपराधान् क्षमस्वाद्य देहि मे दर्शनं प्रिये ॥७२॥
किं करोमि क्व तिष्ठामि त्वां विना जीवनं न मे ।
क्व वसामि क्व गच्छामि कुत्रमे प्राणवल्लभा॥७३॥
इति चिन्ता समाविष्टो राजपुत्रोऽति विह्वलः ।
पुनः पुनर्मनस्तापं कुरुते दीनचेतसः ॥ ७४ ॥

जब प्रियाजू की कण्ठ ध्वनि के समान ध्वनि सुनकर वहां जाने परभी उनके दर्शन नहीं होतेहैं तब शोक से व्याकुल होकर प्रियतमजू "हा कान्ते ! हो प्राणवल्लभे ! आप शीघ्र ही दर्शन दीजिये, आपका हृदय तो परम कोमल है न जाने आज इतना कठिन क्यों हो रहा है ? श्रीफलके समान कठिन उरोजों के धारण करने से तो क्या कुछ उसकी कठिनताका दोष आपके हृदयमें नहीं आगयाहै ? हेप्राण बल्लभे आज निर्दयता कहां से आगई है ? आप मेरे अपराधों को क्षमा कर हे प्रिये ! अपना दर्शन दीजिये ! मैं क्या करूँ ! कहां रहूँ ! मेरा जीवन तो आपके विना नहीं रह सकता, मैं कहां जाऊँ ! मेरी प्राणवल्लभ प्रियतमा तुम कहां हो ! इस

प्रकारकी चिन्तामें विलाप करते हुए श्रीराजकुमारजू अत्यन्त विकल होगये, दीन चित्त से वार-वार मानसिक सन्ताप का कष्ट अनुभव करने लगे ॥ ७०-७१-७२-७३-७४ ॥

ततश्चन्द्रकला दृष्ट्वा प्रियायाःसन्निधिं गता।
उवाच प्रणतिं कृत्वा ह्यत्र चायाति ते प्रियः ।७५
राज पुत्रि ! क्षणं प्रेष्ठे धत्स्व मानं सुखावहम्।
यथा नैवं पुनः कुर्यात्तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥७६॥
यदा ते सम्मुखं गच्छेद्राजपुत्रो मनोहरः।
न चैनं प्रति वीक्षस्व न वदस्व कथञ्चन ॥७७॥

तब चन्द्रकलाजी प्रियतमकी दशा देखकर प्रियाजू के पास जाकर प्रणाम कर विनय पूर्वक बोली-हे राजपुत्रि! आपके प्रियतमजू अब यहां पधारते हैं, आप एक बात हमारी इस समय स्वीकार करिये, जब श्रीराजकुमार आपसे मिलें तब आप थोड़ी वार मौन ग्रहणकर बैठ जाना न उनके सामने ताकना और न उनसे कुछ बोलना, ऐसा करने से श्री राजनन्दनजू पुनः इस प्रकार से आपको दुवारा कष्ट न पहुँचावेंगे इसलिये कहती हूँ ॥ ७५-७६-७७ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली मृदुमानसा।
प्रत्युवाच ततः प्रीत्या प्रियां प्रणयिनीं सखीम् ।७८
कथं चन्द्रकले दृष्टवा कान्तं कमललोचनम्।
सुन्दराङ्गं स्वयं प्राप्तं मानं स्थास्यति मे हृदि ।७९
अहं तु मृदुभावत्वात् प्रियं दृष्ट्वैव सत्वरम्।
समुत्थाय समालिङ्गय हर्षयिष्यामि तंद्रुतम् ।८०
मानं कर्तुं न शक्तिर्मे नैष्ठुर्य्यं नास्ति मे हृदि।
कान्तं खेदयितुं नाहमुत्सहे च कदाचन ॥ ८१

इस प्रकार उनका वचन सुनकर कोमलचित्त श्रीमैथिलीजू प्रेम पूर्वक प्रिय सखी से बोली-हे चन्द्रकले! आपका कहना तो ठीक है परन्तु कमललोचन प्राणप्रियतम परम सुन्दर प्रभु जब स्वयं ही अपनी इच्छा से विना बुलाये आये हैं तब उनको देखकर मेरे हृदयमें मान कैसे ठहर सकता है। मैं तो अति मृदुल स्वभाव होनेसे प्रियतमको देख कर तुरन्त आनन्द के परवस खड़ी हो जाऊँगी और प्रेमपूर्वक आलिङ्गन करूंगी, मान करके प्रियतम के हृदयको कष्ट पहुंचानेका नैष्ठुर्य्यता मैं कभी सहन न कर सकूँगी ॥७८-७९-८०-८१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच-

सत्यं देवि स्वभावं ते कोमलं वेद्म्यहं सदा।
धर्मज्ञे धर्मनिरते क्षमासारे शुचिव्रते॥ ८२॥
तथापि मोहितं वाक्यं कुरुष्वाद्य सुखायनः।
प्रसादयामि ते प्रीत्या नाहं त्वामहितं ब्रुवे।।८३।
मिष्टान्नं भक्षतोऽम्लादि यथा रुचि विवर्धकम्।
नायकानां तथा मानाद्रस वृद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।८४

श्रीचन्द्रकलाजीने कहा-हे देवि। मैं जानतीहूँ कि आप का परम मृदुल स्वभाव है सदा धर्म परायणा-धर्मज्ञा-क्षमा सागरी तथा पवित्र व्रतवाली हो तथापि आप प्रियतमजू को मोहित करने के लिए कुछ ऐसे हीवाक्य कहिये जिससे मान प्रगट हो मैं आपको प्रार्थना करके कहतीहूँ कि इससे आपका कोई अहित न होगा, मिष्टान्न खाते खाते जब मन ऊब जाता है तब तीखे खट्टे पदार्थ रुचि बढ़ाने के लिये पाये जाते ह वैसे ही नायकों में रसवृद्धि करने के लिये मान करना भी उचित ही है, मान करनेसे निश्चय ही प्रेमरसकी वृद्धि होती है, आप किसी प्रकार का भय न करिये॥ ८२-८३-८४॥

तस्मान्मानं प्रशंसन्ति कवयः क्रान्त दर्शिनः।
संयोग विप्रलम्भाभ्यामुभाभ्यामुत्तमो रसः ॥८५।
शृङ्गारो द्विविधः प्रोक्तो विद्वद्भी रसवेदिभिः।
विप्रलम्भः परोभागः संयोग सुखवर्धनात् ॥८६॥
लोकेऽपि गौरवार्थं या मानं कुर्वन्ति योषितः।
ताःपतिं स्ववशीकृत्य मोदन्ते नित्यशो भृशम् ।८७

कवि जन-तत्त्वदर्शी-इसी लिये मानकी प्रसंसा करते हैं संयोग और विप्रलम्भ -दोनों प्रकारसे मानरस उत्तमोत्तम हैं रसतत्त्वविद रसिक विद्वान् शृङ्गार दो प्रकार का कहते हैं एक संयोग और दूसरा विप्रलम्भ, संयोग का सुख और वियोग का दुःख दोनों को सरस बनाने वाला मान रसहै, लोकमें भी जो चतुर नायिकायें अपने गौरव रक्षाके लिये कभी-कभी उचित मान करती हैं वे अपने प्रियतमको वशीभूत करके नित्य नया आनन्द भोगती हैं ॥ ८५-८६-८७ ॥

मानहीना तु या नारी युक्ता सर्व गुणैरपि।
न पत्या सुखमेधेन तिरस्कारं व्रजेदिह ॥ ८८ ॥

ततो गौरव रक्षार्थं मानं कार्यं सुखोदयम् ।
मानात् प्रीतिर्विवर्धेत दम्पत्योर्हृदि निश्चला ।८९

समस्त गुणोंसे सम्पन्न नारी भी-यदि अपने गौरव की रक्षा करने के लिये मान नहीं करती है तो पतिके द्वारा तिरस्कार की प्राप्ति होती है जन्म पर्यन्त एकाङ्गीप्रेम निवाहना पड़ता है, एतदर्थ गौरव रक्षा के लिए और प्रेम सुख वृद्धि के लिये तथा प्रियतम केहृदय में अपने प्रति छिपे हुए प्रेमको प्रकट करने के लिये परीक्षणार्थ भी कभी-कभी मान करना नारियों का अलङ्कार है, मान करनेसे एक दूसरे के गुण दोष एक दूसरे के प्रति व्यक्त होते हैं और दोष निकालकर गुण वृद्धिका विचार प्रेम जोड़ने के दृढ़ होता है, मानसे दम्पति में परस्पर अविचल प्रीति वढ़ती है, इसलिये आप मानको उपादेय समझें हेय न जानकर मान अवश्य करें ॥ ८८-८९

इत्युक्ता मैथिली प्राह न पतिर्मे तथा विधः।
स्वयं तु मदधीनोऽसौ मत्प्रियः प्राणवल्लभः ॥९०
तस्मिन्मानं न चेष्टं मे मार्दवान्मृदुलात्मनि ।
तथापि ते प्रियं कार्यं करिष्यामि समाहिता ॥९१

यह सुनकर श्रीमिथिलाराजकुमारीजी बोली-हेप्रिये। मेरे प्राणपतिजू उसप्रकारके नहीं हैं वे तो स्वयं ही प्रेमातिशय के कारण मेरे वशीभूत रहते हैं, मेरे प्रियतम मेरे प्रानवल्लभ हैं, मैं अत्यन्त मृदुल स्वभाव होने के कारण उनसे मान कैसे करूंगी। परन्तु आज तुम्हारा प्रिय करने के लिए चित्त को थोड़ी देर के लिए कठिन करके मानलीला करूँगी ॥ ६०-६१ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच-

भो-भो प्रिये पुनस्त्वेकं मे वाक्यं शृणु सादरम्।
प्रियोपरि प्रसन्नार्थं त्वामहं प्रार्थये यदा ॥ ६२ ॥
तदा त्वं कान्तमालिङ्गय कुचाग्रेण प्रपीडय।
वियोग जन्यं तद्दुःखं तद्विनाशाय धीमतः ।६३।
प्रियसार्द्धं तदावार्तां कुरुष्व श्रीमहेश्वरि।
यदाहं त्वां सुनेत्राभ्यांसंप्रचोदय मैथिलि ॥६४॥

श्रीप्रियाजूका वाक्य सुनकर श्रीचन्द्रकलाजू पुनः बोली हे स्वामिनीजू मेरा एक वचन और भी आप आदर पूर्वक श्रवण करें, जब मैं प्रसन्न होकर प्रियतमजू से मिलने की प्रा -

र्थना करूं तब आप प्रियतम कान्तका आलिङ्गन करते समय अपने कुचोंके अग्रभाग से उनके वक्षस्थल को दबाइयेगा, ऐसा करने से श्रीराजकुमार के हृदय में आपके वियोग का जो दुःख घुसा हुआ है वह निकल जायगा, वे चतुर राज पुत्र आप पर बड़े प्रसन्न होंगे॥ ९२-९३ ॥ और हे मैथिली जब आपके दोनों नेत्रों के इसारा से मैं प्रेरणा करूँ तब प्राण प्रीतमजू स संभाषण करिये ॥ ९४ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्री विचक्षणा।
तामुवाच सखीं प्रीत्या प्रियवादिनि मे शृणु ।९४
तव वाक्यं करिष्यामि चेति मे हृदि निश्चितम्।
धरिष्यामि कथं धैर्य्यं पतिं दृष्टवा तु विह्वलम्।९५
तथापि त्वद्धितार्थाय करिष्यामि ब्रवीषियत्।

श्रीचन्द्रकलाजी का वचन सुनकर परमचतुर राजकु-मारी जू प्रियसखी के प्रति प्रेम पूर्वक बोली-हे प्रियभाषिणी प्रेम युक्त मेरा वचन सुनो। मैं तुम्हारा वचन पालन करूँगी परन्तु प्रेम विह्वल प्राण पतिको देखकर मैं कैसे धैर्य धारण करूँगी यह बड़ा सन्देह मनमें लगा हुआ है तोभी तुम्हारे वचनकी रक्षाके लिये मैं आज मान करूँगी ॥ ९४-९५ ॥

किञ्चित्कालं मया धैर्य्यं धार्यंतेतु कथञ्चन।९६
यदाऽगमिष्यति प्रेयो मत्समीपेऽति विह्वलः।
तदा त्वया यद्वक्तव्यं नाशु वक्ष्यसि तद्यदि ॥९७
पुनर्नमे ततः शक्यं धैर्य्यं धारयितुं शुभे।
अतो दोषो न दातव्यः पुनश्च मे हितैषिणि।९८
गच्छ यत्नं कुरु क्षिप्रं यथाऽगच्छेत् प्रियोऽन्ति मे।

परन्तु हे सखी ! थोड़ी वार तो मैं किसी प्रकार धैर्य्य धारण करूँगीं, परन्तु जब अत्यन्त प्रेम विह्वल प्रियतम मेरे पास आवेंगे उस समय उनसे तुमको जो कुछ कहना सुनना हो शीघ्र ही कह सुन लेना, यदि शीघ्रता न करोगी तो मैं पुनः अधिक विलम्ब तक धैर्य धारण न कर सकुंगी इस लिए देर करके फिर हमको दोष न लगाना, तुम मेरी परम हितैषिणी हो इस लिये अपना स्वभाव तुम्हारे आगे प्रकट कर देती हूँ, यह न होकि मानलीला अधूरी ही रह जाय और गौरव बढ़ाने के बदले नाटक करके हँसी कराना पड़े। जाओ अब जल्दी करो, जिस प्रकार प्रियतम शीघ्र ही मेरे पास आवें वैसा उपाय करिये ॥ ९६-९७-९८ ॥

इत्युक्त्वा तां प्रणम्याथ कौतुकाविष्टमानसा । ६६
आजगाम पुनस्तत्र यत्र वीणा प्रवादनैः ।
भ्रामयन्ती स्थिता पूर्वं राजपुत्रं विचक्षणम् ।१००

ऐसा वचन श्रवण कर श्रीस्वामिनीजू के चरणों में प्रणामकर श्रीचन्द्रकलाजी-कौतुक केलिविलास में प्रसन्नचित्त वाली वहीं आगई, जहां बैठकर एकान्त कुञ्जमें वीणा बजाकर श्रीराजकुमारजू के चित्तमें भ्रम डालकर उनको घुमा फिरा रही थी ॥ १०० ॥

श्रीपार्वत्युवाच-

सर्वकामकलाभिज्ञो रतिशास्त्रेषु पण्डितः ।
वीणा वाणीं न संवेद त्विति मे संशयः प्रभो ।१०१

श्रीपार्वतीजी बोली-हेनाथ ! सभी काम कलामें परम चतुर कोकशास्त्र के महापण्डित श्रीराजकुमार वीणा की वाणी को क्यों न जान सके इस बातका मेरे हृदयमें महान् संशय है । कृपा करके आप निवारण करिये ॥ १०१ ॥

श्रीशिवउवाच-

सा वै चन्द्रकला तस्य काचिच्छक्ति महाद्भुता ।
स्वया शक्त्या विमुग्धोऽसौ ज्ञानमावृत्य लीलया ।

।१०२। स तु राजकुमारो वै वीणावाद्येन मोहितः
विस्मृत्य निखिलां विद्यां विभ्रमे समुपागतः।१०३

श्रीशङ्करजी ने उत्तर दिया-हे पार्वति ! श्रीचन्द्रकलाजी उन्हीं की कोई एक महान् अद्भुत महाशक्ति हैं, वे अपनी ही शक्ति से स्वयं अपने ही लीलासुख वढ़ाने के लिये ज्ञान को छिपाकर विमुग्ध बन गये । श्रीराजकुमारजू उस वीणा वाणी से विमोहित होकर अपनी समस्त विद्याओं को भूल गये और भ्रममें पड़कर कौतुक करने लगे ॥ १०२-१०३ ॥

अत्याश्चर्य्यं मनोहारी प्रियाया सदृशो ध्वनिः।
प्रियावाणीवीणयोश्च न भेदो लक्ष्यते क्वचित् १०४
अहं तिष्ठामि चाप्यत्र त्वं कुत्र भ्रमसे प्रभो।
इति वीणारवं श्रुत्वा तत्र गत्वा निरीक्ष्यताम् १०५
अस्मात्स्थानात् प्रियायास्तु वाणीं प्राप्तोऽस्मिन प्रियाम्। ब्रूहि चन्द्रकले सत्यं क्व गता सा मम प्रिया ॥ १०६ ॥

अत्यन्त आश्चर्यं कारक मनको हरण करने वाली प्रियाकी वाणी के समान ही ध्वनि आती है, प्रियाकी वाणी

और वीणा के स्वर में कुछ भी तारतम्य प्रतीत नहीं होता है। ऐसा विचार राजकुमार करते थे इतने में ही एक दिशासे वाणी सुन पड़ी-मैं यहां परहूँ हेप्रभो! आप उधर कहां भटकने जारहे हो! यह सुनकर प्रियतमजू उसी ओर चले, वहां जाकर देखा परन्तु प्रियाजू को न देखकर आप चन्द्रकलाजू से बोले हेचन्द्रकले! तुम सत्य-सत्य कहो, मेरी प्रियाजू की वाणी तो इसी स्थल से आती परन्तु क्या कारण है मैं उन का दर्शन नहीं कर सकताहूँ, मेरी प्राणप्रियाजू कहां चली गई हैं सत्य बात बताइये॥ १०४-१०५-१०६ ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच-

नाहं प्रियां ते जानामि कुत्र तिष्ठति सुव्रत।
मोहिनी वंशिका शब्दैराह्वयस्व स्ववल्लभाम्१०७

हे देव! मैं आपकी प्राणप्रिया को नहीं जानती कि कहां परहैं आपतो बड़े जादूगर (नायिका) हैं, वंशीकी मोहिनी ध्वनि करके अपनी प्राणवल्लभा को आकर्षित कर लीजिये॥ १०७॥

श्रीराजकुमार-उवाच-

मायया ते त्विदं सर्वं ममाति भ्रम दायिनी।

मदनाग्नि प्रदग्धोऽस्मि तच्छान्तिं कर्तुमर्हसि ॥१०८॥ त्वं मे प्राणप्रिया साक्षाद्वल्लभायाश्च वल्लभा। ममोपरि कृपां कृत्वा प्रदर्शय मम प्रियाम् ॥ १०६ ॥ शीघ्रं प्राणप्रियापार्श्वे मां नयस्वाशु वल्लभे। अनृणोऽस्मि तव प्राणदात्र चन्द्रकले प्रिये ॥ ११० ॥

यह सुनकर श्रीराजकुमार बोले कि हे चन्द्रकले! यह सब मेरे मनको भ्रममें डालनेवाली तुम्हारी अजेय माया ही है, मैं अब कामाग्नि में जल रहाहूँ उसकी शान्ति करने में तुम्ही एक समर्थ हो। तुम मेरी सर्वाधिक प्राणप्रिय सखी हो और मेरी प्राणवल्लभा को भी प्राणोपम प्यारी हो, मुझपर कृपा करके मेरी प्राणप्रियाजू का दर्शन करा दीजिये। हे प्रानवल्लभे। शीघ्र ही तुम मेरी प्राणप्रियाजू के पास मुझे ले चलो, मेरी प्राणदाता इस समय तुम बनो, मैं सत्य कहता हूँ तुम्हारे इस उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ ॥ १०८-१०९-११० ॥

श्रीचन्द्रकलोवाच-

त्वया कृतापराधेन प्रिया कोप समाकुला।

भविष्यति न सा तुष्टा तव यत्नशतैरपि ।१११।
तथाप्यहं प्राणनाथ प्रिया सम्मेल हेतवे ।
यत्नं वहु विधास्यामि चिंतां मा कुरु राघव ।११२
ध्रुवं मे वचनं श्रुत्वा त्वया सार्द्धं हि मैथिली ।
हृदा सा गाढमालिङ्गय प्रापयिष्यत्यलं सुखम् ११३
अद्यारभ्य प्राणनाथ मैवं कुरु पुनस्त्विदम् ।
अपराधं प्राणहरमस्माकं विरहप्रदम् ॥ ११४॥
क्षमापयस्व प्रियया संप्रीणाय प्रयत्नतः ।
पुनरेवं यथा नैव भवेत्कष्टतां परम् ॥ ११५ ॥

श्रीचन्द्रकलाजी श्रीप्राणनाथजूका वचन सुनकर बोली हे नाथ । आपने महान् अपराध कियाहै इसलिये प्रियाजू कोप में भरकर रूठ बैठीहैं, आप सैकड़ों उपाय करिये तो भी प्रसन्न न होगी । तो भी मैं आपको और प्रियाजूको मिलने के लिये अनेकों प्रकार के प्रयत्न करूँगी-हे श्रीराघवेन्द्रजू। आप कोई चिन्ता न करें । आप यह निश्चय जानिये कि मेरी बात मानकर श्रीमैथिलीजू हृदयका गाढ आलिङ्गन देकर आपको परम सुख प्रदान करेगी । परन्तु आज दिनसे फिर कभी हे प्राणनाथ । इस प्रकार हम सबको विरह का दुख देकर

प्राण हरण करने वाला भयङ्कर अपराध नहीं करना। चलिये श्रीप्राणप्रियाजू के निकट जाकर उन्हें प्रसन्न करिये और अपराध क्षमा कराइये जिससे पुनः ऐसा जीवन विनाशक महाकष्ट आपको अथवा उनको कभी न भोगना पड़े ॥ १११-११२-११३-११४-११५ ॥

युवयोस्तु वियोगो नोऽसह्यो वै भवति ध्रुवम्।
इत्युक्त्वा पाणिना पाणिं सा प्रगृह्य प्रमोदिता ११६
यत्र राजकुमारी सा तूष्णीमास्ते क्रुधातुरा।
तत्राजगाम सा तूर्णं साक्षाच्चन्द्रकला सखी।११७
दृष्ट्वा प्राणप्रियं कान्तं सा चोत्थाय महोत्सुका।
प्रस्थाप्य शय्यां धर्मेण प्रोवाच कुटिलेक्षणा।११८

आप दोनों का वियोग हम सब सहन नहीं कर सकतीं हैं। इसलिये अब ऐसा न करेंगे इस प्रकार प्रतिज्ञा करा कर प्रियतमजू का हाथ अपने हाथसे पकड़कर प्रसन्न होकर उनको वहां ले गई जहां क्रोध में भरी श्रीराजकुमारीजू मान करके बैठी थीं। साक्षात् चन्द्रकला सखी को अपने प्राण नाथ को साथ आते देखकर श्रीकिशोरीजू प्रेमावेश में पर्यङ्क से उठकर धर्मतत्त्वज्ञा श्रीजूने प्रियतमको शय्यापर बैठाये

और श्रीचन्द्रकलाजू की वार्ता स्मरणकर क्रोधितास्वर में बोलीं ॥ ११६-११७-११८ ॥

निर्दयत्वं श्यामलत्वात् सदा तिष्ठति मानसे ।
परपीडां न जानासि मां पीडयसि भूरिशः।११९
एवमाभास्य सा देवी तुष्णीं पुनरुपागता ।
अधोमुखी प्रियाभूत्वा पदोदृष्टि विधाय च ।१२०

हे श्यामसुन्दर। आपबाहर तो श्याम हैं ही परन्तु भीतर भी वैसे ही काले कुटिल हो, अतः निर्दयता करना सीख गये हो दूसरे की मनो व्यथा का कुछ भी-अनुभव आपको नहीं होता हैं, इसीलिये हमको वार-वार ऐसी भयङ्कर पीड़ा देते हो। इस प्रकार कह कर देवी मैथिलीजू चुप होगई कुछ न बोल सकी नीची आंखे करके पावों की ओर देखने लगी, मुख मण्डल प्रणय क्रोध और प्रेमावेश से विचित्र भाव भङ्गीवाला होगया ॥ ११९-१२० ॥

तां दृष्ट्वा राजपुत्रस्तु हर्ष शोक समाकुलः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणीं प्रोवाचमुदमावहन् ।१२१
अयेप्रिये त्वमस्त्वाद्य कृतं यद्दुस्तरं महत् ।

आगस्त्वं मे क्षमारूपे कारुण्यामृत विग्रहे ।१२२
अथवा देहि मे दण्डं यत्ते मनसि वर्तते ।
यद्वा कुचाग्राङ्कुशेन ताडनं कुरु मे प्रिये ।१२३।
शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि शरणागतवत्सले ।
गृहीत्वा मां कराग्रेण वक्षसा संप्रपीडय ॥१२४।
अधरामृत दानेन रदनिस्पेषणैरपि ।
हरतापं विरहजं दुःसहं मदनेरितम् ॥ १२५ ॥

श्रीस्वामिनिजू का रोष भरी वाणी सुन कर भीतर का प्रेम देखकर हर्षित और रोष देखकर शोकाकुल बने हुए श्रीराजकुमार उनके प्रति बड़े ही विनीत होकर मधुरवाणी बोले अपने कर कमलमें प्रियाजू का कोमलकर ग्रहण कर हृदय में आनन्द बढ़ाते हुए आपने कहा-हेप्रियतमे ! आज मेरा यह अपराध आप क्षमा करें, मैंने जो महादुःख आपको दिया यह मेरा दोष आप क्षमा स्वरूप होने से क्षमाकरदें, हे कारुण्यामृत सागरी ! आपको दण्ड देना ही अभीष्ट हो तो जो आपके मनमें हो दण्ड प्रदान करे, चाहे वाहुपाश में वांध लेंवे, चाहें कठिन कुचों के नुकीले अग्रभागरूप अङ्कुशकी ताड़ना करें

चाहें हाथ पकड़कर हृदय में दबाले, चाहें अधरामृत का दान देकर दन्ताग्रों की पीड़ा प्रदान करे, आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें मैं सर्वदा आपके शरण हूँ, आप शरणागत बत्सला प्रसिद्ध ही हैं, जिस प्रकार आपके वियोग का ताप जो मदन मारुत की झकोर से और भी तीव्र हो गया है उसको हरन कर संयोग सुख प्राप्त हो वही उपाय करने की कृपा करिये ॥ १२१-१२२-१२३-१२४-१२५ ॥

मैथिली तु प्रियस्याथ विह्वलस्य विशेषतः ।
श्रुत्वा करुणया पूर्णं वाक्यमुत्कण्ठिता भृशम्१२६
कोमलाङ्गी राजपुत्री पतिदुःखेन दुःखिता ।
प्रिय स्नेहेन हृत्पूर्णा सखीवाक्येन बन्धिता ।१२७
पुरा वचो रक्षणार्थं यच्च सख्या सहाभवत् ।
प्रियानेत्रानुसारेण चोदितां तां पुनः पुनः।१२८
ज्ञात्वा तस्याश्च तात्पर्यं प्रियाया भानुनन्दिनी ।
किञ्चित्कालं तु सा देवी नाब्रवीद्वचनं क्वचित्।१२९

श्रीमिथिलेश कुमारी-महाकरुणापूर्णा- परमोत्कण्ठिता प्रेमविह्वल प्राणनाथ के इस प्रकार दीनवचन सुनकर प्रिय-

तम के स्नेहसे पूर्ण हृदय होगई, कोमलाङ्गी राजकुमारी-पति के दुःखको न सह सकी, परन्तु एक तरफ प्रियतम का स्नेह बन्धन और दूसरी ओर प्रियसखी का वचन बन्धन दुविधा में डाल रहा था पहले जो चन्द्रकलाजी के साथ प्रतिज्ञा हुईथी उसका स्मरणकर तथा प्रियतम को मिलन की हृदयमें पूर्ण अधीरता देखकर वार-वार प्रियसखी की ओर निहारती हैं और प्रियतम को आलिङ्गन देनेकी अनुमति शीघ्र ही मिल जाय इसलिये सचेत करती है श्रीप्रियाजूका हार्दिक भाव जानने में परम निपुण श्रीचन्द्रभानुकुमारीजी आशय जानते हुएभी प्रेम गौरव की रक्षा के लिये थोड़ी वार कुछ न बोली ॥ १२६-१२७-१२८-१२६ ॥

प्रिय सङ्गमलाभाय यावदुत्थातुमैच्छत ।
तावच्चन्द्रकला दक्षा रक्षार्थं निज गौरवम् ।१३०
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं विदेह नृपनन्दिनीम् ।
देवि ! पश्य प्रियं प्राप्तं वेपमानं च त्वद्भयात् ।१३१
याचन्तं प्राञ्जलिं दीनं द्रष्टुं ते मुखपङ्कजम् ।
अपराधं क्षमस्वाद्य पुनर्नैवं करिष्यति ॥१३२।

परन्तु श्रीचन्द्रकलाजी ने जब देखा कि अब प्रेमातिशय के कारण श्रीकिशोरीजी प्राणनाथ को आलिङ्गन देने के लिये आगे बढ़ना चाहती ही हैं तब उनके सम्मान की रक्षाके लिये उपयुक्तसमय जानकर विनय पूर्वक हाथ जोड़कर बोली हे श्रीविदेहराज नन्दिनीजू! देखिये, आपके भयसे भयभीत अपराधी की भाँति कांपते हुए प्रियतमजू आपके निकट पधारे हैं, आपके मृदुल हास्यपूर्ण मुख कमलका दर्शन करने की याचना करते हैं आप अपना क्रोध निवारण कर दीजिये, इनका अपराध क्षमा करिये, अब पुनः कभी ऐसा अपराध न करेंगे, आज अपना रोष शान्त कर इन्हें प्रेमसुख प्रदान करिये ॥ १३०-१३१-१३२ ॥

तस्यास्तद्व्याहृतं वाक्यं मनोऽभिलषितं प्रियम्।
श्रुत्वोत्थाय समालिङ्गय कान्तं प्रोवाच सस्मिता ।१३३। पुनर्नैवं विधेयं ते यादृशं कृतवानसि।
वंशिकाध्वनिना प्रेष्ठ मां विजेतुं त्वमिच्छसि।१३४

मनभाई मीठी वाणी प्रिय सखीकी सुनकर श्रीकिशोरीजी मन्द-मन्द हँस कर उठी और दृढ़ालिङ्गन देकर प्रेमसे मिली, स्नेहाधिक्य के कारण प्रियतमजू से आपने कहा कि

हे नाथ ! अब कभी ऐसा काम भूल कर भी-न करना जैसा कि आपने आज किया है, आप अपनी वंशीकी ध्वनिसे हम सब को जीतना चाहतेहैं ? क्या वीणाकी ध्वनि कभी-सुनी नहीं थी-जो विजय करने चल पड़ेथे ॥ १३३-१३४ ॥

इत्युक्त्वा तं तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिङ्ग्य बाहुभ्यां चुचुम्बाधरमाधुरीम्१३५
हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमब्जकरेण सरोज निभम्। उरसा प्रिय वक्षसि सङ्गमतो सुखमाप महोत्सवजन्यमहो ॥ १३६ ॥

ऐसा कहकर स्नेह सरस विकसित नयनादेवी श्रीकिशोरीजू अपने प्राणनाथका दिव्य भुजवल्लियां से आलिङ्गनकर अधरमाधुरी का अमृतोपम रसास्वादन करनेलगी। हृदय से हृदय-मुखसे मुख-कर कमलों से करकमल तथा वक्षस्थल से वक्षस्थल मिलाकर महोत्सव जन्य परम आनन्दका अनुभव करने लगी, दिव्य सनातन दम्पति महासुख सागर में मग्न होगये ॥ १३५-१३६ ॥

दम्पत्योः कौतुकं दृष्ट्वा सख्यस्तद्गतमानसाः।
तदा जय जयेत्यूचुर्मुदिता सर्वतो दिशम् ।१३७

नाना पक्कान्न पात्राणि नाना स्वाद्यफलानि च। नाना पेयानि चोष्याणि नाना स्वादूनि यानि च ॥१३८॥ संस्थाप्याग्रे तयोस्त्वेवं संभोज्य विधिवत्तथा। ताम्बूल दर्पणादीनि दर्शयित्वा प्रयत्नतः ॥ १३६ ॥ सख्यो नीराजनं चापि पुष्पाञ्जलिमथो स्तवम्। कृत्वा सम्यग्विधानेन प्रपश्यन्ति निरीक्षणम् ॥ १४० ॥

सनातन दिव्य दम्पति साकेत विहारी विहारिणीजू का सच्चिदानन्ददायक केलि कौतुक देखकर श्रीयुगल प्रभुके चरणों में आसक्त हृदया सखी गणोंने उस समय हर्षातिरेक में जय जयकार किया, फूल बरसाये, दशों दिशाओं में वह आनन्द ध्वनि व्याप्त हो गई। नाना भांतिके पकवान, अनेकों प्रकारके स्वादिस्ट फल-मूल-कन्द, विविध प्रकारके पेय (पीने योग्य) चोष्यादि (चूसने योग्य) और जो-जो भांति भांति भोज्य पदार्थ हैं, प्रेम पूर्वक अर्पण किये, विधिवत् भोजन कराके सुगन्धित जल द्वारा आचमन कराया, तत्पश्चात् पान-सुपारी-इलायची आदि अर्पण कर दर्पण दिखाया

और आरती उतार कर फूलोंकी वृष्टिकी, पुनःप्रणाम-प्रार्थनादि करके गौरश्याम नयनाभिराम लोक ललाम नवलकिशोर किशोरीजू के मुख कमल को दर्शन करने लगी ॥ १३७ १३८-१३९-१४० ॥

तौ महा सुख सम्पन्नौ परस्पर रतीच्छया।
शय्यायां कामकल्लोलं कर्तुमुत्सुकमानसौ। १४१
कामकेलिकलाभिज्ञौ रतिशास्त्रविशारदौ।
चुम्बन स्पर्शनादीनि चक्राते रसविग्रहौ ॥१४२।

तत्पश्चात् महासुख सम्पन्न युगलप्रभु परस्पर रति सुख की कामना से सयन कुञ्जमें पधारे। वहां दिव्य पर्य्यङ्क पर आसीन होकर काम कल्लोल जनित सुख प्राप्त करने को चित्त उत्कण्ठित होगया। रतिशास्त्र विशारद काम केलि कला पाराङ्गत दोनों दिव्यरस विग्रह स्वानन्द आत्मसुखानुभूति करनेके लिये परस्पर आलिङ्गन चुम्बन-स्पर्शनादि सरस सुख भोगमें मग्न होगये ॥ १४१-१४२ ॥

इत्थं चन्द्रकलायास्तु चरित्रं परमाद्भुतम्।
मया ते कथितं देवि! परमानन्दसागरम्।१४३

हे देवि ! मैंने यह श्रीमती सर्वेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजू का परमानन्दसागर अद्भुत पवित्र चरित्र तुमको वर्णन कर सुनाया ॥ १४३ ॥

येऽतिरूक्षा महामूढा निन्दका रसवत्कथाम् ।
न श्रावयेदपुण्यांस्तान् रसिकानां च जीवनम् ।१४४। य इदं शृणुयाद्भक्त्या यः पठेत्स्थिरमानसः।
स लभेच्छाश्वतं स्थानं दम्पत्योःकेलिजं सुखम् १४५

इति श्रीमल्लोमशसंहितायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

जो अत्यन्त रूक्षज्ञानी हैं, शुष्क हृदय हैं महामूढता वश कुतर्क कर रसखण्डन करनेवाले हैं, निन्दक हैं, रसवाली-कथाओं में लौकिक विषय वासना की दुर्गन्ध लानेवाले हैं, उन पुण्यहीनों को यह चरित्र कभी नहीं सुनाना, यह तो रसिक सुजनों का ही जीवनधन है । जो दोष-दुर्बुद्धि त्याग कर-रागद्वेष तर्कवाद रहित श्रद्धासम्पन्न सज्जन इस चरित्र का श्रवण करेंगे अथवा चित्तको स्थिर रखकर प्रेमपूर्वक पाठ करेंगे उनको दिव्य धाममें सनातन दिव्य दम्पति प्रभु श्रीसीतारामजी का सच्चिदानन्द रसघन केलिसुख के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा ॥ १४४-१४५ ॥

जय जय जनककुमारिका, जय जय अवध किशोर।
चन्द्रकला गुण आगरी, जय अलिगण शिरमौर॥ १॥
चारु चरित चितचोर यह, पढ़त सुनत जो कोय।
युगल कृपामृत माधुरी, अधिकारी सो होय॥ २॥
जो जन रूखे रसिकजन, सङ्गति रहित अजान।
ते कुतर्क करि हैं सदा, वशीभूत मद-मान॥ ३॥
आज्ञा सन्तनकी मिली, कियो चरित्र बखान।
'सन्त प्रिया' व्याख्या ललित, पढ़िये सन्त सुजान॥ ४॥
ऋतु[६] नभ[०] गगन[०] सुनेत्र[२] शुचि, विक्रमाब्द सुखसार।
रघुपति रथयात्रा रुचिर, मङ्गल मङ्गलवार॥ ५॥
श्रीमल्लोमश संहिता, अष्टाध्याय अनूप।
हिन्दी टीका युत लिखे, प्रेमनिधी रसकूप॥ ६॥
गुणग्राही गुण ग्रहण करि, तजि मम दोष अपार।
करि करुणा छमि सन्तजन, दें आशीष उदार॥ ७॥

इति श्रीसीतारामीय श्रीमन्मथुरादासजी महाराज चरणाश्रित अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि' प्रणीतायां सन्त प्रियाख्या व्याख्या समन्वितायां श्रीमल्लोमश-संहितायां ललित मानलीला वर्णनोनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥१॥

श्रीमन्नृप विक्रमाब्द २००६ अषाढ़ शुक्ला २ मङ्गलवारे
श्रीरामरथयात्रायाःशुभ दिने शुभकृन्नाम संवत्सरे
सन्तप्रिया व्याख्या समाप्तिममवार